भारत सरकार
भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट सं. 246

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के संशोधन

अगस्त, 2014

बीसवें विधि आयोग का गठन विधि कार्य विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी आदेश सं. ए-45012/1/2012-प्रशा.-III (एल.ए.) तारीख 8 अक्तूबर, 2012 द्वारा 1 सितंबर, 2012 से तीन व-र् की अवधि के लिए किया गया ।

विधि आयोग पूर्णकालिक अध्यक्ष, चार पूर्णकालिक सदस्य (सदस्य सचिव सहित), दो पदेन सदस्य और पांच अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ए. पी. शहा

पूर्ण कालिक सदस्य

न्यायमूर्ति एस. एन. कपूर
प्रो. (डा.) मूलचंद शर्मा
न्यायमूर्ति ऊना मेहरा
श्री एन. एल. मीणा, सदस्य सचिव

पदेन सदस्य

श्री पी. के. मल्होत्रा, सचिव (विधायी विभाग और विधि कार्य विभाग)

अंशकालिक सदस्य

श्री आर. वेंकटरमणी
प्रो. (डा.) योगेश त्यागी
डा. विजय नारायण मणि
प्रो. (डा.) गुरजीत सिंह

विधि आयोग
14वें तल, हिंदुस्तान टाइम्स हाउस,
के. जी. मार्ग,
नई दिल्ली - 110001 पर स्थित है ।

सदस्य सचिव

श्री एन. एल. मीणा

अनुसंधान अधिकारी

डा. (श्रीमती) पवन शर्मा	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	अपर विधि अधिकारी
श्री एस. सी. मिश्र	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	उप विधि अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ http://www.lawcommissionofindia.nic.in
इंटरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार
भारत का विधि आयोग

न्यायमूर्ति अजित प्रकाश शहा
भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
भारत सरकार
हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली - 110001
दूरभाा : 23736758 फैक्स : 23355741

Justice Ajit Prakash Shah
Former Chief Justice of Delhi High Court
Chairman
Law Commission of India
Government of India
Hindustan Times House
K.G. Marg, New Delhi-110 001
Telephone : 23736758, Fax : 23355741

अ.शा. सं. 6(3)238/2012-एल.सी.(एल.एस.) तारीख : 5 अगस्त, 2014

प्रिय श्री रवि शंकर प्रसाद जी,

मैं, '**माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के संशोधन**' पर आयोग की 246वीं रिपोर्ट संलग्न कर रहा हूं । अधिनियम के कार्यकरण में पाई गई कई अपर्याप्तताओं को ध्यान में रखते हुए, आयोग को माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 ('अधिनियम') के उपबंधों का पुनर्विलोकन का कार्य सौंपा गया ।

आयोग ने पहले 'माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001 पर अपनी 176वीं रिपोर्ट में अधिनियम से संबंधित कई संशोधनों की सिफारिशें की थीं । 176वीं रिपोर्ट की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात्, सरकार ने लगभग सभी सिफारिशों को स्वीकार करने का विनिश्चय किया और तदनुसार 22 दिसंबर, 2003 को राज्यसभा में 'माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2003 पुरःस्थापित किया गया । बाद में, न्यायमूर्ति सराफ समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए विधेयक को आगे और विश्ले-ण के लिए कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी स्थायी समिति को निर्दि-ट किया गया ।

विभाग संबंधी स्थायी समिति का भी आकस्मितः यह मत था कि विधेयक के कई उपबंध अपर्याप्त और विवादास्पद हैं अतः, विधेयक को इसके वर्तमान स्वरूप में वापस ले लिया जाए और इसकी सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् पुनः पुरःस्थापित किया जाए । तदनुसार विधेयक को राज्यसभा से वापस ले लिया गया ।

अधिनियम के उपबंधों पर फिर से विचार करने के लिए विधि और न्याय मंत्रालय ने विख्यात अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, उद्योगपतियों, संस्थाओं और विभिन्न अन्य पणधारकों से सुझाव आमंत्रित करते हुए 8 अप्रैल, 2010 को परामर्श पत्र जारी किया । पत्र के कई उत्तर प्राप्त करने के पश्चात्, मंत्रालय ने जुलाई/अगस्त, 2010 के दौरान अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, उद्योगपतियों, माध्यस्थम् संस्थाओं और आम जनता से सुझाव आमंत्रित करते हुए संपूर्ण देश में कई 'रा-ट्रीय संगोि-ठियां' आयोजित कीं । रा-ट्रीय संगोि-ठियों से प्राप्त ऐसी टिप्पणियों और सुझावों के आधार पर मंत्रालय ने प्रारुप प्रस्ताव तैयार किया और मंत्रिमंडल के लिए प्रारुप टिप्पण तैयार किया गया ।

इसके पश्चात्, मंत्रालय ने आयोग से 'मंत्रिमंडल के लिए प्रारुप टिप्पण' में अधिनियम के प्रस्तावित संशोधनों के अध्ययन का कार्य करने के लिए कहा । तदनुसार, आयोग ने प्रस्तावित संशोधनों का अध्ययन करने और तदनुसार सुझाव देने के लिए विधि के क्षेत्र के कई प्रख्यात व्यक्तियों की एक विशे-ाज्ञ समिति गठित की । फिक्की, सी.बी.आई. और एसोचोम जैसे विभिन्न संस्थाओं से लिखित उत्तर भी प्राप्त हुए ।

गहन विचार-विमर्श और अध्ययन के पश्चात् आयोग ने अब यह रिपोर्ट तैयार की है ।

इस रिपोर्ट के अध्याय 3 में प्रस्तावित संशोधन अंतर्वि-ट हैं । रिपोर्ट के उपाबंध में भी टिप्पण के साथ-साथ वर्तमान अधिनियम में किए गए परिवर्तन चिह्नों के साथ प्रस्तावित संशोधन अंतर्वि-ट है ।

सादर,

भवदीय

ह0/-

(अजित प्रकाश शहा)

श्री रवि शंकर प्रसाद,
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली - 110 001

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के संशोधन
वि-नय-सूची

अध्याय	शी-र्क	पृ-ठ
I.	**रिपोर्ट की पृ-ठभूमि**	8
	भारत में माध्यस्थम् विधि का इतिहास	8
	माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की स्कीम	10
	विधि आयोग की 176वीं रिपोर्ट	11
	न्यायमूर्ति बी. पी. सराफ समिति	12
	कार्मिक, लोक शिकायत और विधि और न्याय मंत्रालय की विभाग संबंधी स्थायी समिति की रिपोर्ट	12
	20वें विधि आयोग की वर्तमान रिपोर्ट	13
II.	**प्रस्तावित संशोधनों का परिचय**	15
	भारत में संस्थागत माध्यस्थम्	16
	मध्यस्थों की फीस	17
	माध्यस्थम् कार्यवाहियों का संचालन	19
	न्यायपालिका और माध्यस्थम्	20
	न्यायालयों में, अधिकरण के समक्ष विलंब और विनिधान संधि जोखिम	23
	माध्यस्थम्-पूर्व न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति और प्रकृति	25
	देशी पंचाट का अपास्त किया जाना और विदेशी पंचाट की मान्यता/प्रवर्तन	28
	विदेश स्थित माध्यस्थम्ों में न्यायिक हस्तक्षेप	30
	चुनौती की स्वीकृति पर पंचाट के प्रवर्तन पर स्वतः रोक	32
	अंतरिम उपायों का आदेश देने की अधिकरण की शक्तियां	33
	कपट की माध्यस्थता और तथ्य के जटिल मुद्दे	34
	मध्यस्थों की तटस्थता	35
	'पक्षकार' की परिभा-ा	38
	अधिनिर्णीत रकम पर ब्याज	40

	खर्च	41
	अन्य संशोधन	42
	संक्रमणकालीन उपबंध	42
III.	**माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के प्रस्तावित संशोधन**	43
	उद्देशिका का संशोधन	43
	धारा 2 का संशोधन	43
	धारा 6क का अंतःस्थापन	46
	धारा 7 का संशोधन	48
	धारा 8 का संशोधन	49
	धारा 9 का संशोधन	50
	धारा 11 का संशोधन	51
	धारा 12 का संशोधन	54
	धारा 14 का संशोधन	55
	धारा 16 का संशोधन	56
	धारा 17 का संशोधन	56
	धारा 20 का संशोधन	57
	धारा 23 का संशोधन	58
	धारा 24 का संशोधन	58
	धारा 25 का संशोधन	58
	धारा 28 का संशोधन	59
	धारा 31 का संशोधन	59
	धारा 34 का संशोधन	60
	धारा 36 का संशोधन	61
	धारा 37 का संशोधन	62
	धारा 47 का संशोधन	63
	धारा 48 का संशोधन	63
	धारा 85 का अंतःस्थापन	64
	अनुसूचियों का संशोधन	65

अध्याय I
रिपोर्ट की पृ-ठभूमि

1. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1996 अधिनियम' कहा गया है, देशी माध्यस्थम्, अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् और विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों के प्रवर्तन से संबंधित विधि को समेकित और संशोधित करने के लिए तथा सुलह से संबंधित विधि को परिभाि-त करने के लिए और उनसे संबंधित या उनके आनु-ंगिक वि-ायों के लिए अधिनियम है ।

भारत में माध्यस्थम् विधि का इतिहास

2. भारत में माध्यस्थम् संचालन के विनियमन का इतिहास काफी पुराना है । माध्यस्थम् वि-ाय पर प्रथम प्रत्यक्ष विधि भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1899 थी ; किंतु इसका उपयोजन कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के प्रेसीडेंसी नगरों तक सीमित था । इसक पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का अधिनियमन हुआ जिसकी दूसरी अनुसूची पूर्णतः माध्यस्थम् के लिए थी ।

3. संपूर्ण देश के माध्यस्थमों को लागू करने वाला पहला मुख्य समेकित विधान माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 था जो माध्यस्थम् अधिनियम, 1934 (अंग्रेजी) पर आधारित था । अधिनियम ने माध्यस्थम् अधिनियम, 1899 और सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 को उसकी दूसरी अनुसूची संहिता सुसंगत उपबंधों को निरसित किया । तथापि, 1940 अधिनियम विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन के बारे में नहीं था जिसके लिए विधानमंडल ने जेनेवा कन्वेंशन पंचाट से निपटने के लिए माध्यस्थम् (प्रोटोकोल और कन्वेशन) अधिनियम, 1937 और न्यूयार्क कन्वेंशन पंचाटों से निपटाने के लिए विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 पारित किया । 1940 अधिनियम, जो देशी माध्यस्थमों के बारे में था, का कार्यकरण कतई समाधानप्रद नहीं था । उस समय माध्यस्थम् व्यवस्था व्यापकतः माध्यस्थम् प्रक्रिया के अविश्वास पर आधारित थी और न्यायालयों ने इस पर काफी प्रतिकूल टिप्पणी की ।

4. उच्चतम न्यायालय ने **एफ.सी.आई.** बनाम **जोगिन्दर मोहन्दर पाल,** (1989) 2 एस. सी. सी. 347, पैरा 7 में यह मत व्यक्त किया -

> "हमें माध्यस्थम् विधि को सरल, अल्प तकनीकयुक्त और स्थिति की वास्तविक असलियत के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाना चाहिए जो न्याय और नि-पक्षता के सिद्धांतों के प्रति जवाबदेह हो और मध्यस्थ को ऐसी प्रक्रिया और

मानकों का पालन करने के लिए बाध्य करे जो पक्षकारों में न केवल न्याय करके बल्कि ऐसी भावना पैदा करके विश्वास पैदा करे कि यह प्रतीत हो कि वास्तव में न्याय किया गया है ।''

5. कई अन्य मामलों में 1940 अधिनियम के कार्यकरण पर प्रतिकूल टिप्पणी की गई । उच्चतम न्यायालय की मनोव्यथा **गुरुनानक फाउंडेशन** बनाम **रतन सिंह,** (1981) 4 एस. सी. सी. 634 वाले मामले में न्यायमूर्ति डी. ए. देसाई के मताभिव्यक्तियों से स्प-ट है :

''अपर्यवसेय, समय खपाऊ, जटिल और खर्चीले न्यायालय प्रक्रियाओं ने विधिवेत्ताओं को अल्प औपचारिक, विवादों के समाधान के लिए अधिक प्रभावी और शीघ्र, प्रक्रियात्मक दिखावे से मुक्त अनुकल्पी फोरम का तलाश करने हेतु विवश किया और इसके फलस्वरूप माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (संक्षेप में 'अधिनियम') का उदय हुआ । तथापि, जिस तरह से अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां संचालित की जा रही है और निरपवादतः न्यायालयों में उनकी चुनौती दी जा रही है, का अधिवक्ता मजाक उड़ा रहे हैं और विधि दार्शनिक विलाप कर रहे हैं । अनुभव से यह पता चलता है और विधि रिपोर्टों में इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि उस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां प्रत्येक स्तर पर अविरत अतिविस्तार के साथ-साथ अत्यधिक तकनीकग्रस्त हो गई है जिससे वे अन्धाधुन्ध विधिक जाल में फंस जाती हैं । पक्षकारों द्वारा अपने विवादों के शीघ्र निपटान के लिए चुना गया फोरम न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा 'कानूनियत' की अप्रत्याशित जटिलता में आवृत्त हो गया है ।''

6. 1940 अधिनियम की कार्य प्रणाली भी पांचवीं लोकसभा की लोक लेखा समिति की 210वीं रिपोर्ट का वि-नय था । भारत के विधि आयोग ने भी अपनी 76वीं रिपोर्ट में 1940 अधिनियम की कार्य प्रणाली की परीक्षा की ।

7. व-र्ा 1991 में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के पश्चात् समस्या और जटिल और सुस्प-ट हो गई है । विदेशी निवेशक विवाद समाधान की निश्चायक और दक्ष प्रणाली पर आधारित एक स्थिर कारबार वातावरण और विधिसम्मत नियम की ठोस वचनबद्धता की अपेक्षा करते हैं । इस प्रकार माध्यस्थम् जैसी अनुकल्पी प्रणाली को विदेशी विनिधान को आकर्-ात करने और बनाए रखने की पूर्वापेक्षा के रूप में देखा गया ।

8. इन समस्याओं से निजात पाने के लिए, पूर्व व्यवस्था को माध्यस्थम् और सुलह विधेयक, 1995 द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने की ईप्सा की गई जिसे संसद् में पुरःस्थापित किया गया । क्योंकि 1995 विधेयक को अपेक्षित विधायी अनुशास्ति नहीं

मिल सकी, अतः भारत के रा-ट्रपति ने 1995 विधेयक जैसा माध्यस्थम् और सुलह अध्यादेश, 1996 प्रख्यापित किया । यह रोचक है कि अध्यादेश को दो बार प्रख्यापित करना पड़ा क्योंकि संसद् अपेक्षित समायावधि में विधि अधिनियमित नहीं कर सकी । अंततः, संसद् ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के निबंधनानुसार विधेयक पारित किया जिसे 16.08.1996 को भारत के रा-ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और यह 22.08.1996 को प्रवृत्त हुआ । तथापि, यह ऐसे मामलों को लागू हुआ जहां माध्यस्थम् कार्यवाहियां 25.01.1996 को आरंभ हुई थीं । 1996 अधिनियम अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् पर यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि, 1985 और यू.एन.सी. ट्राल सुलह नियम, 1980 पर आधारित है । 1996 अधिनियम ने सभी तीन पूर्व विधियों (उपरोक्त उपवर्णित 1937 अधिनियम, 1940 अधिनियम और 1967 अधिनियम) को निरसित किया और (i) देशी माध्यस्थम्ों ; (ii) विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन ; और (iii) सुलहों को लागू हुआ । यद्यपि, यूएनसीट्राल मोडल विधि का आशय 1996 अधिनियम में अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों से निपटने के लिए मोडल विधि का उपबंध करना था किंतु कुछ छुट-पुट उपांतरणों के साथ यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि के उपबंधों को देशी और अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् दोनों को लागू बताया गया ।

9. अधिनियम यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि (36 अनुच्छेदों का समूह) पर आधारित है जो संयुक्त रा-ट्र के कार्यकारी समूह द्वारा सभी अंतरा-ट्रीय माध्यस्थों को शासित करने के लिए प्रारुपित किया गया था और अंततः 21 जून, 1985 को संयुक्त रा-ट्र अंतरा-ट्रीय व्यापार विधि (यू.एन.सी. ट्राल) द्वारा अंगीकृत किया गया । यू.एन. सामान्य सभा के संकल्प में यह परिकल्पित है कि सभी देशों को माध्यस्थम् प्रक्रियाओं पर विधि की एकरुपता की वांछनीयता और अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक पद्धति की विनिर्दि-ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मोडल विधि पर सम्यक् विचार करना चाहिए । यह कहते हुए 1996 के अधिनियम की उद्देशिका में सम्यक् रूप से प्रतिबिंबित किया गया है कि : ''पूर्वोक्त मोडल विधि को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम् और सुलह का सम्मान करते हुए विधि बनाना समीचीन है ।''

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की स्कीम

10. 1996 अधिनियम का प्रारुपण करते समय, मुख्य मुद्दों में से एक मुद्दा माध्यस्थम् प्रक्रिया में विलंब कम करने की आवश्यकता थी । दूसरा उद्देश्य 1940 अधिनियम के प्रतिकूल अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों को इसकी परिधि में लाना था क्योंकि वह अधिनियम केवल देशी माध्यस्थम्ों के बारे में ही था । इन उद्देश्यों में से कुछ को माध्यस्थम् और सुलह विधयेक, 1995 के उद्देश्यों और कारणों के कथन में

स्प-टतः प्रतिबिंबित किया गया है जिसकानीचे उल्लेख किया जा रहा है :

(क) व्यापकतः अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् और सुलह और देशी माध्यस्थम् और सुलह को समाहित करने ;

(ख) माध्यस्थम् प्रक्रिया में न्यायालयों की पर्यवेक्षणीय भूमिका को कम करने ;

(ग) यह उपबंध करने के लिए कि प्रत्येक अंतिम माध्यस्थम् पंचाट को उसी तरह से प्रवृत्त किया जाए मानो यह न्यायालय की डिक्री है ।

11. 1996 अधिनियम अंतरा-ट्रीय और देशी माध्यस्थम् दोनों अर्थात् जहां क्रमशः कम से कम एक पक्ष भारतीय रा-ट्रिक नहीं है और जहां दोनों पक्ष भारतीय रा-ट्रिक हैं, को समाहित करता है ।

12. 'माध्यस्थम्' शी-र्क वाला 1996 अधिनियम का भाग-1 सामान्य प्रकृति का है और इसमें दस अध्याय हैं । भाग-2 'कतिपय विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन' के बारे में है । भाग-2 जेनेवा कन्वेंशन पंचाटों के बारे में है । 1996 अधिनियम का भाग-3 सुलह के बारे में है जिसका वर्तमान रिपोर्ट से कुछ लेना-देना नहीं है । 1996 अधिनियम का भाग-4 अनुपूरक उपबंधों से संबंधित है ।

13. 1996 अधिनियम में तीन अनुसूचियां भी हैं । पहली अनुसूची विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों की मान्यता और प्रवर्तन के कन्वेंशन (1996 अधिनियम की धारा 44 के अधीन भी आता है) को निर्दि-ट करती है । दूसरी अनुसूची माध्यस्थम् खंडों के प्रोटोकोल (1996 अधिनियम की धारा 53 के अधीन भी आता है, को निर्दि-ट करती है । तीसरी अनुसूची विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों के नि-पादनों से संबंधित अभिसमय को निर्दि-ट करती है ।

विधि आयोग की 176वीं रिपोर्ट

14. व-र् 2001 में, सरकार ने आयोग को इसकी कार्य प्रणाली में पाई गई विभिन्न खामियों और इस बावत सरकार को प्राप्त विभिन्न अभ्यावेदनों को भी ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 का व्यापक पुनर्विलोकन करने का प्रतिनिर्देश किया ।

15. आयोग ने ऐसे अभ्यावेदनों पर विचार किया जिसमें यह इंगित किया गया था कि यू.एन.सी. ट्राल मोडल (जिसके आधार पर माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 अधिनियमित किया गया था) का मुख्य आशय विभिन्न देशों को 'अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्' के लिए एकसमान मोडल प्रदान करना था किंतु 1996 अधिनियम ने विशुद्धतः भारतीय रा-ट्रिकों के बीच देशी माध्यस्थम् के मामलों को भी ऐसे

मोडल विधि के उपबंधों को लागू बनाया । अंतः, इससे अधिनियम के क्रियान्वयन में कुछ कठिनाइयां पैदा हुईं ।

16. इसके अतिरिक्त, 1996 अधिनियम के उपबंधों के निर्वचन से संबंधित विभिन्न उच्च न्यायालयों के कई परस्पर-विरोधी निर्णय भी थे । अधिनियम की कार्य प्रणाली की कठिनाइयों के बारे में कई अन्य पहलुओं की ओर भी आयोग का ध्यान आकृ-ट किया गया ।

17. वि-नय से संबंधित विधि का गहन अध्ययन करने के पश्चात्, आयोग ने 176वीं रिपोर्ट के रुप में माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 में संशोधन करने की सिफारिशें की ।

न्यायमूर्ति बी. पी. सराफ समिति

18. सरकार ने 176वीं रिपोर्ट की सिफारिशों पर विचार किया और राज्य सरकारों और विभिन्न संस्थाओं से परामर्श करने के पश्चात् लगभग सभी सिफारिशों को स्वीकार करने का विनिश्चय किया । तदनुसार, माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2003 राज्यसभा में 22 दिसंबर, 2003 को पुरःस्थापित किया गया ।

19. तत्पश्चात् 22 जुलाई, 2004 को सरकार ने विधि आयोग की 176वीं रिपोर्ट की सिफारिशों और माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2003 के सभी पहलुओं के विश्ले-ाण का गहन अध्ययन करने के लिए डा. न्यायमूर्ति बी. पी. सराफ की अध्यक्षता में माध्यस्थम् पर 'न्यायमूर्ति सराफ समिति' के रूप में ज्ञात एक समिति गठित की । न्यायमूर्ति सराफ समिति ने इसके पश्चात् 29 जनवरी, 2005 को विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की ।

कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी स्थायी समिति की रिपोर्ट

20. न्यायमूर्ति सराफ समिति की रिपोर्ट के आलोक में, माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2003 को तत्पश्चात् अध्ययन और विश्ले-ाण के लिए कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय मंत्रालय की विभाग संबंधी स्थायी समिति को निर्दि-ट किया गया । कई प्रख्यात अधिवक्ता, व्यापार और उद्योग के प्रतिनिधि, पब्लिक सेक्टर उपक्रम और संबद्ध विभाग के प्रतिनिधि उक्त समिति के समक्ष उपस्थित हुए और विस्तार से अपने विचार व्यक्त किए । समिति ने इसके पश्चात् 4 अगस्त, 2005 को संसद् में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कीं ।

21. समिति का यह मत था कि विधेयक के उपबंध माध्यस्थम् प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण हस्तक्षेप की गुंजाइस प्रदान करते हैं । समिति ने भारत में संस्थागत

माध्यस्थम् प्रचार करने की आवश्यकता पर बल दिया और इस बावत हमारे देश में एक संस्था की स्थापना की मांग की जो अंतरर-ट्रीय मानकों के अनुरुप हो ।

22. समिति ने आगे यह मत व्यक्त किया कि कई उपबंध न केवल अपर्याप्त है बल्कि विवादास्पद भी है । अतः, उक्त विधेयक को वापस ले लिया जाना चाहिए और समिति की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् नया विधेयक लाया जाना चाहिए ।

23. समिति द्वारा सुझाए गए विभिन्न संशोधनों को ध्यान में रखते हुए, उपरोक्त विधेयक को राज्यसभा से वापस लिया गया । उस समय यह विनिश्चित किया गया कि समिति की सिफारिशों का गहन अध्ययन करने के पश्चात् संसद् में नया विधेयक पुरःस्थापित किया जाए ।

20वें विधि आयोग की वर्तमान रिपोर्ट

24. 1996 अधिनियम में संशोधनों का सुझाव देने के लिए अध्ययन करने हेतु, विधि और न्याय मंत्रालय ने भी 8 अप्रैल, 2010 को प्रख्यात अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, उद्योगपतियों, संस्थाओं और सरकार के विभिन्न अन्य वर्गों और अन्य पणधारियों से सुझाव/टिप्पणी आमंत्रित करते हुए एक परामर्श पत्र जारी की ।

25. मंत्रालय को कई लिखित उत्तर प्राप्त हुए जिनका विस्तार से मिलान और अध्ययन किया गया । इसके पश्चात्, विधि और न्याय मंत्रालय ने जुलाई/अगस्त, 2010 के दौरान अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, उद्योग, माध्यस्थम् संस्थाओं और आम जनता सहित विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों से परामर्श पत्र पर सुझाव आमंत्रित करने के लिए नई दिल्ली, मुंबई और बैंगलुर में रा-ट्रीय संगोि-ठियां आयोजित की ।

26. रा-ट्रीय संगोि-ठियों में लिखित रुप से प्राप्त और मौखिक रुप से व्यक्त टिप्पणियों और सुझावों और तत्पश्चात् हुई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, मंत्रालय ने प्रारुप प्रस्ताव तैयार किए । प्रारुप प्रस्तावों के आधार पर, मंत्रालय ने 'मंत्रिमंडल के लिए प्रारुप टिप्पण' तैयार किया । इसके पश्चात् एफ सं. ए-60011/48/2010-प्रशा.।।। (एल.ए.) द्वारा विधि और न्याय मंत्रालय ने विधि आयोग से 'मंत्रिमंडल के लिए प्रारुप टिप्पण' में अधिनियम के प्रस्तावित संशोधन का अध्ययन करने का अनुरोध किया । तदनुसार, वर्तमान निर्देश पूर्वोक्त निबंधनानुसार इस आयोग के समक्ष आया ।

27. इस निर्देश के अनुसरण में, विधि आयोग ने प्रस्तावित संशोधनों का अध्ययन करने और तदनुसार सुझाव देने हेतु एक विशे-ाज्ञ समिति गठित की । न्यायमूर्ति रोहिन्टन नरीमन (तत्कालीन वरि-ठ काउंसेल), श्री अरविन्द दतार, श्री शिशिर ढोलकिया, श्री डारिस खम्बत, श्री दु-यंत दबे, श्री सिक्कू मुखोपाध्याय, सुश्री जिया मोदी, श्री एन. एल. राजह, श्री अजय थामस, श्री सुहान मुखर्जी, श्री अनिरुद्ध कृ-णन, श्री अनिरुद्ध वाधवा,

श्री गिरिराज सुब्रमनियम और श्री आशुतो-न रे' जैसे विधिक क्षेत्र के कई प्रख्यात व्यक्तियों से मिलकर समिति बनी ।

28. तत्पश्चात् न्यायमूर्ति रोहिन्टन नरीमन, श्री अरविन्द दतार, श्री डारिस खम्बत, श्री शिशिर ढोलकिया, श्री दु-यंत दबे और श्री एन. एल. राजह द्वारा आयोग को लिखित टिप्पण और सुझाव परिचालित किए गए । श्री गौरव बनर्जी (तत्कालीन भारत के अपर महासालिसिटर) द्वारा भी पृथकतः लिखित टिप्पण दिया गया ।

29. सिक्की, एसोचेम और सी.आई.आई. जैसी विभिन्न संस्थाओं द्वारा भी लिखित उत्तर दिए गए । सी.आई.आई. की ओर से श्री ललित भसीन, वरि-ठ अधिवक्ता, सुश्री पल्लवी श्राफ और श्री तेजस करिया, अधिवक्ता और फिक्की की ओर से श्री डी. सेन गुप्ता ने महत्वपूर्ण सुझाव दिए ।

30. आयोग ने भी विधि आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष और वि-नय की पूर्व रिपोर्ट (176वीं रिपोर्ट) के रचयिता न्यायमूर्ति जगन्नाथ राव से कई बार विचार-विमर्श की । आयोग ने मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमनियम के मतों पर भी विचार किया ।

31. आयोग ने भी पृथकतः श्री अनिरुद्ध वधवा और श्री अनिरुद्ध कृ-णन से कई बार चर्चाएं की जिनके विचार तीक्ष्ण, महत्वपूर्ण और विशि-टतः ध्यानाक-र्षक थे ।

32. इसके पश्चात्, व्यापक विचार-विमर्श, चर्चा और गहन अध्ययन के पश्चात् आयोग ने वर्तमान रिपोर्ट को आकार प्रदान किया ।

अध्याय II

प्रस्तावित संशोधनों का परिचय

1. भारत के न्यायालयों में मुकदमा लड़ना समय-खपाऊ और खर्चीला उद्यम है और न्याय प्रायः दोनों पक्षकारों को प्रवंचित करता है । विशे-नकर वाणिज्यिक विवादों में पक्का अन्याय होता ही है जहां मामले व-र्नों तक लंबित रहते हैं । इस संदर्भ में व्यक्ति को विवाद समाधान के तरीके के रुप में 'माध्यस्थम्' की परीक्षा करनी चाहिए जिसका लक्ष्य न्यायालय के माध्यम से पारंपरिक विवाद समाधान का प्रभावी और दक्ष विकल्प उपलब्ध कराना है ।

2. अधिकांश विधिक प्रणालियों की तरह भारत में वाणिज्यिक संविदा, चाहे प्राइवेट व्यक्ति या राज्य के साथ हो, में प्रायः माध्यस्थम् खंड होता है जहां पक्षकार न्यायालय में जाने के बजाय माध्यस्थम् के माध्यम से किसी भावी विवाद को सुलझाने हेतु सहमत होते हैं । इस प्रकार, माध्यस्थम् विवाद समाधान के वाणिज्यिकतः महत्वपूर्ण तरीके के रूप में उभरा ; और इसका महत्व 1991 में उदारीकरण से ही बढ़ा है ।

3. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) अंतरर-ा्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् की यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि, 1985 और यू. एन. सी. ट्राल सुलह नियम, 1980 पर आधारित है । अधिनियम अब लगभग दो दशकों से प्रवृत्त है और इस समयावधि में यद्यपि माध्यस्थम् तेजी से मुकदमे के विकल्प के रूप में प्रायः चुना जा रहा है फिर भी, यह अधिक खर्च और विलंब सहित विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हो गया है जो या तो इसे पूर्व व्यवस्था जिसका आशय इसको प्रतिस्थापित करना था ; या मुकदमेबाजी जिसका आशय विकल्प उपलब्ध कराना था, से अधिक बेहतर नहीं रह गया है । विलंब माध्यस्थम् प्रक्रिया में अंतनिर्हित हैं और माध्यस्थम् का खर्च बहुत अधिक हो सकती है । यद्यपि न्यायालय कतिपय विवाद्यक जो माध्यस्थम् के समक्ष, पश्चात् या इसके दौरान भी उद्भूत होते हैं, को अंतिमता प्रदान करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं फिर भी न्यायालयों के समक्ष लंबित मामलों की भारी सूची में माध्यस्थम् संबंधी मुकदमों के फंस जाने का गंभीर खतरा विद्यमान है । पंचाट के पश्चात्, धारा 34 के अधीन चुनौती पंचाट को अनि-पाद्य बनाता है और ऐसी अर्जियां कई व-र्नों तक लंबित बनी रहती हैं । शीघ्र अनुकल्पी विवाद समाधान का उद्देश्य प्रायः विफल ही रह जाता है ।

4. अतः, ऐसी समस्या जो माध्यस्थम् प्रक्रिया में प्रायः उद्भूत होती हैं, से निपटने

के लिए अधिनियम के कतिपय उपबंधों का पुनरीक्षण करने की अत्यावश्यकता है । इस अध्याय का प्रयोजन आयोग की रिपोर्ट में सुझाए गए परिवर्तनों का आधार अधिकथित करना है । सुझाए गए संशोधन ऐसे कई किस्म के मुद्दों से संबंधित हैं जो भारत में माध्यस्थम् की वर्तमान व्यवस्था को तंग करते हैं, इसलिए, संशोधनों को निर्दि-ट करने के पूर्व, ऐसी समस्याओं की पहचान करना उपयोगी होगा जिनका उपचार सुझाए गए संशोधनों द्वारा किया जाना आशयित है और ऐसा संदर्भ जिसमें उक्त समस्याएं उद्भूत होती है और अतः ऐसा संदर्भ जिसमें उनका समाधान निकाला जाना है ।

भारत में संस्थागत माध्यस्थम्

5. माध्यस्थम् तदर्थ या संस्थागत प्रक्रियाओं और नियमों के अधीन संचालित किया जा सकेगा । जब पक्षकार तदर्थ माध्यस्थम् के आधार पर आगे कार्यवाही करने का चुनाव करते हैं तो पक्षकारों को अपने निजी नियम और प्रक्रियाएं प्रारुपित करने का विकल्प है जो उनके विवाद की आवश्यकताओं के अनुसार उचित हो । दूसरी ओर संस्थागत माध्यस्थम् ऐसा है जिसमें स्थायी प्रकृति की एक विशि-टीकृत संस्था हस्तक्षेप करती है और ऐसी संस्था के नियम माध्यस्थम् प्रक्रिया को सहायता देने और प्रशासित करने का कृत्य करते हैं । निश्चय ही, माध्यस्थम् कार्यवाहियों की रुपरेखा और प्रक्रियाएं पक्षकारों द्वारा अभिहित संस्था द्वारा अवधारित की जाती हैं । ऐसी संस्थाएं संस्था के पास पैनल में उपलब्ध अर्हित मध्यस्थ भी उपलब्ध करा सकती हैं । इसके अतिरिक्त, संस्था के सचिवीय और वृत्तिक स्टाफ से सहायता भी उपलब्ध कराई जाती है । संस्थागत माध्यस्थम् की ढांचागत प्रक्रिया और उपलब्ध कराई गई प्रशासनिक सहयोग के परिणामस्वरूप यह सुभिन्न फायदे उपलब्ध कराती है जो तदर्थ माध्यस्थम् अपनाने वाले पक्षकारों को अनुपलब्ध है ।

6. तथापि, भारत में संस्थागत माध्यस्थम् का विस्तार नगण्य है और दुर्भाग्यवश वस्तुतः आरंभ भी नहीं हुआ है । इस संदर्भ में, अधिनियम संस्थागत माध्यस्थम् अज्ञेयवादी है - जिसका यह अर्थ है कि पक्षकारों को संस्थागत माध्यस्थम् पर विचार करने को न तो प्रोत्साहित करता और न ही हतोत्साहित । तथापि, आयोग द्वारा सुझाए गए परिवर्तन, भारत में संस्थागत माध्यस्थम् की संस्कृति को प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं, जिसे आयोग यह महसूस करता है कि ऐसी संस्थागत और व्यवस्थित मंदी को दूर करने का काफी हद तक प्रयास करेगा जिसने माध्यस्थम् के विकास को गंभीर रूप से प्रभावित किया है ।

7. अतः, आयोग ने इस आशा के साथ अधिनियम की धारा 11(6क) में स्प-टीकरण 2 जोड़ने की सिफारिश की है कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय, अधिनियम की धारा 11 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में कार्य करते हुए

पक्षकारों को अपने विवाद संस्थागत माध्यस्थम् को निर्दि-ट करने को प्रोत्साहित करने के कदम उठाएंगे । इसी प्रकार, आयोग संस्थागत माध्यस्थम् के नियमों की विधायी अनुशास्ति के अनुमोदन की ईप्सा करता है जो ''आपात मध्यस्थ'' की अवधारणा को मान्यता प्रदान करते हैं और यह धारा 2(घ) के अधीन ''माध्यस्थम् अधिकरण'' की परिभा-ा को व्यापक बनाकर किया गया है ।

8. इस संदर्भ में, आयोग दिल्ली उच्च न्यायालय अंतरा-ट्रीय माध्यस्थम् केंद्र की स्थापना और कार्यशैली का उल्लेख करता है जो व-र् 2009 में आरंभ हुआ और अब उचित रूप से स्थापित है और अपने उपयोक्ताओं को अच्छी सेवा प्रदान कर रहा है । पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने भी व-र् 2014 में अपना निजी नियमावली के साथ माध्यस्थम् केंद्र आरंभ किया । आयोग आगे भारतीय माध्यस्थम् परि-ाद (आई.सी.ए.) की कार्यशैली का उल्लेख करता है जो फिक्की से सहबद्ध है और जो देश में पूर्वतर माध्यस्थम् संस्थाओं में से एक है । आयोग आगे चेन्नई में नानीपालकी-वाला माध्यस्थम् केंद्र की कार्यशैली की सिफारिश करता है जिसको अपनी निजी नियमावली, शासी निकाय और स्टाफ है और दक्षिणी भारत में सुस्थापित है ।

9. भारत में संस्थागत माध्यस्थम् की संस्कृति को और प्रोत्साहित और स्थापित करने के लिए, आयोग यह विश्वास करता है कि व्यापार निकायों और वाणिज्यिक चैम्बरों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे अपनी निजी नियमावली के साथ नए माध्यस्थम् केंद्र आरंभ करें जो अधिक स्थापित केंद्रों के नियमों के अनुसार हों । सरकार भी नए माध्यस्थम् केंद्रों की स्थापना के लिए भूमि और निधियां उपलब्ध कराकर सहायता कर सकती है । संस्थागत माध्यस्थम् को आगे बढ़ाने के लिए विधिक समुदाय, जो माध्यस्थम् की प्रैक्टिस कर रहे हैं और कारबार समुदाय, जो माध्यस्थम् के उपयोक्ताओं से मिलकर बना है, के बीच बातचीत आरंभ करना महत्वपूर्ण है । सरकार भारत का माध्यस्थम् आयोग जैसा विशि-ट निकाय विरचित करने पर भी विचार कर सकती है जिसमें माध्यस्थम् के सभी पणधारियों का प्रतिनिधित्व हो और जिसे अन्य बातों के साथ-साथ देश में संस्थागत माध्यस्थम् के विस्तार को प्रोत्साहित करने का भी कार्य सौंपा जाए ।

मध्यस्थ की फीस

10. भारत में माध्यस्थम् विशे-ाकर, तदर्थ माध्यस्थम् के विरुद्ध मुख्य शिकायतों में से एक शिकायत कई मध्यस्थों द्वारा मनमाना, एकतरफा और अननुपातिक फीस के नियतन सहित इससे जुड़ी ऊंची खर्च है । आयोग यह विश्वास करता है कि यदि माध्यस्थम् वस्तुतः घरेलू संदर्भ में विवाद समाधान का खर्च प्रभावी साध्य हो जाए तो माध्यस्थम्ों के फीस ढांचे को तार्किक बनाने का कोई तरीका होना चाहिए । **भारत संघ** बनाम **सिंह बिल्डर सिंडिकेट** (2009) 4 एस. सी. सी. 533 वाले मामले में उच्चतम

न्यायालय के समक्ष मध्यस्थों की फीस के वि-नय पर गुहार लगाई गई जहां यह मत व्यक्त किया गया :

> "माध्यस्थम् की खर्च अधिक हो जाती है यदि माध्यस्थम् अधिकरण सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से मिलकर बना है । ..... निस्संदेह यह आम राय है कि माध्यस्थम् का खर्च कई मामलों में काफी अधिक हो जाती है जिसमें सेवानिवृत्त न्यायाधीश मध्यस्थ हैं । किसी सीमा के बिना बारंबार बैठकों की अधिक संख्या और प्रति बैठक काफी अधिक फीस की प्रभार्यता का परिणाम विवाद में अंतवर्लित रकम या पंचाट का रकम कई बार माध्यस्थम् के खर्च के समतुल्य या यहां तक कि अधिक हो जाता है । जब न्यायालय द्वारा फीस उपदर्शित किए बिना किसी मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है तो या तो दोनों पक्षकार या कम से कम एक पक्षकार नुकसान में रहता है । प्रथमतः, पक्षकार मध्यस्थ द्वारा सुझाई गई फीस, चाहे जो हो, पर सहमत होने के लिए विवश महसूस करते हैं, चाहे यह अधिक या उनकी क्षमता से परे हो । द्वितीयतः, यदि मध्यस्थ द्वारा अधिक फीस का दावा किया जाता है और एक पक्षकार ऐसी फीस देने हेतु सहमत हो जाता है तो दूसरा पक्षकार, जो ऐसी फीस देने में असमर्थ है या ऐसी अधिक फीस देने का अनिच्छुक है, की किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति हो जाती है । वह इस आशंका को व्यक्त करने की स्थिति में नहीं रहता कि मध्यस्थ द्वारा सुझाई गई फीस से सहमत होने की उसकी इनकारी का उसके मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा या दूसरा पक्षकार जो आसानी से अधिक फीस देने के लिए सहमत है, के पक्ष में पक्षपात सृजित करेगा ।"

11. इस समस्या का व्यवहार्य समाधान उपलब्ध कराने के लिए, आयोग ने फीस की आदर्श अनुसूची की सिफारिश की है और उच्च न्यायालय को मध्यस्थों के लिए फीस के नियतन हेतु समुचित नियम विरचित करने के लिए सशक्त किया है और इस प्रयोजन के लिए वह फीस की उक्त आदर्श अनुसूची पर विचार कर सकता है । फीस की आदर्श अनुसूची दिल्ली उच्च न्यायालय अंतरर-ट्रीय माध्यस्थम् केंद्र द्वारा स्थिर फीस अनुसूची पर आधारित है जो 5 व-र्ा से अधिक पुराना है और जिसका उपयुक्ततः पुनरीक्षण किया गया है । फीस की अनुसूची को नियमित रूप से नवीनतम करने की अपेक्षा होगी और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह हमेशा यथार्थ बनी रहे, प्रत्येक 3-4 व-र्ा पर उसका अवश्य पुनरीक्षण किया जाए ।

12. आयोग ने इस पर ध्यान दिया कि अंतरर-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों में ऐसे विदेशी पक्षकार होते हैं जो मध्यस्थों की फीस के लिए भिन्न-भिन्न मूल्य और मानक रखते हों, इसी प्रकार संस्थागत नियमों की अपनी निजी फीस की अनुसूची हो सकती है ; और दोनों मामलों में पक्षकार स्वायत्तता को काफी सम्मान दिया जाना चाहिए ।

अतः, आयोग ने अभिव्यक्ततः विशुद्ध देशी, तदर्थ माध्यस्थम्ों के संदर्भ तक अपनी सिफारिशें सीमित रखी हैं ।

माध्यस्थम् कार्यवाहियों का संचालन

13. आयोग ने यह ध्यान दिया है कि अधिनियम में ऐसे कई उपबंध है जो माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संचालन के बारे में है और वे अधिनियम के अध्याय 7 में उपवर्णित हैं । तथापि, अधिनियम के विद्यमान उपबंधों जिनका लक्ष्य माध्यस्थम् कार्यवाहियों का उचित संचालन सुनिश्चित करना है के बावजूद आयोग का यह नि-क-र्ा है कि भारत में माध्यस्थम् का अनुभव सभी पणधारियों के लिए व्यापक रूप से असंतो-नजनक रहा है ।

14. माध्यस्थम् की कार्यवाहियां अधिनियम के अध्याय 5 के विनिर्दि-ट उपबंध जो माध्यस्थम् अधिकरण की पर्याप्त शक्तियों का उपबंध करते हैं, के बावजूद न्यायालय कार्यवाहियों की प्रतिकृति है । आयोग यह आशा करता है कि माध्यस्थम् अधिकरण विलंब में कमी लाने के लिए अधिनियम के विद्यमान उपबंधों का उपयोग करेंगे ।

15. तदर्थ माध्यस्थम्ों में, फीस ''प्रति बैठक'' आधार (कभी-कभी उसी विवाद और उन्हीं पक्षकारों के बीच एक दिवस में दो/तीन बैठक) पर प्रभारित की जाती है । तारीखें प्रायः काफी दूर-दूर की होती है और कार्यवाहियां व-र्ों तक चलती रहती हैं - जिसके परिणामस्वरूप खर्च में वृद्धि होती रहती है और व्यथित पक्षकार को न्याय नहीं मिल पाता है । भारतीय व्यवस्था में बारंबार स्थगनों की संस्कृति पनप गई है जहां अधिवक्ताओं में न्यायालय के मामलों को पूर्विकता देने के साथ-साथ माध्यस्थम् को द्वितीयक माना जाता है ।

16. आयोग ने यह उल्लेख किया है कि यह सांस्कृतिक आंदोलन माध्यस्थम् समुदाय से उभरना चाहिए । मध्यस्थों को विशुद्धतः ऐसी औपचारिक बैठकों से परहेज करना चाहिए जिसका आशय केवल अनुपालन करना हो । न्यायालयों ने पहले ही उपदर्शित किया है कि पंचाट पारित करने में विलंब ऐसे पंचाट को अपास्त करने की ओर प्रेरित कर सकता है [उदाहरणार्थ **आयल इंडिया लि.** बनाम **ईस्सार आयल लि.,** ओ. एम.पी. सं. 416/2004 तारीख 17.08.2012, पैरा 30-40 ; **भारत संघ** बनाम **नीको रिसोर्स लि.,** ओ.एम.पी. सं. 192/2010, तारीख 02.07.2012, पैरा 43-51 ; **पीक केमिकल कारपोरेशन ईंक** बनाम **नाल्को,** ओ.एम.पी. 160/2005 तारीख 07.02.2012, पैरा 29 वाले मामलों में दिल्ली उच्च न्यायालय के विनिश्चयों को देखें] - और इससे सभी मध्यस्थों को मामलों की शीघ्रता से और युक्तियुक्त समय के भीतर

सुनवाई करने और विनिश्चित करने की प्रेरणा लेनी चाहिए । इसी प्रकार पक्षकारों के काउंसेलों को निरर्थक स्थगनों की ईप्सा करने या निरर्थक सुनवाई पर बल देने या लंबे उलझन और असंगत साक्ष्य देने से विरत रहना चाहिए । आयोग ने आगे यह उल्लेख किया कि टेली-कांफ्रेंसिंग, वीडियो-कांफ्रेंसिंग आदि जैसी तकनीक के विवेकसम्मत उपयोग को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और यह असानी से विशुद्धतः औपचारिक बैठकों की आवश्यकता को प्रतिस्थापित कर सकता है और जिससे माध्यस्थम् कार्यवाहियों के सहज और अधिक दक्षपूर्ण संचालन में सहायता मिल सकेगी ।

17. इस संदर्भ में, आयोग ने अधिनियम की धारा 24(1) में दूसरा परंतुक जोड़ने का प्रस्ताव किया है जिसका आशय बारंबार और आधारहीन स्थगनों की परम्परा को हतोत्साहित करना और साक्ष्य तथा बहसों को अभिलिखित करने के प्रयोजनों के लिए माध्यस्थम् अधिकरण की लगातार बैठकें सुनिश्चित करना है ।

18. विवादों के समाधान में शीघ्रता और मितव्ययिता के उद्देश्यों को प्राप्त करने में अधिनियम के फोकस को आगे निरुपित करने और पुनः पु-ट करने के लिए आयोग ने अधिनियम की उद्देशिका में वृद्धि का भी प्रस्ताव किया है । जब कि यह अधिनियम के निबंधनानुसार पक्षकारों के परिभाि-त सारवान अधिकारों और दायित्वों को प्रत्यक्षतः प्रभावित नहीं करेगा फिर भी, यह माध्यस्थम् अधिकरणों और न्यायालयों को अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन करने और व्यवहार्य बनाने का आधार उपलब्ध कराएगा जिससे कि यह अंततः माध्यस्थम् के अंतिम उपयोक्ताओं के फायदे के उद्देश्यों को प्राप्त कर सके ।

न्यायपालिका और माध्यस्थम्

19. कुछ वर्गों का यह विचार है कि न्यायिक हस्तक्षेप माध्यस्थम् के लिए अभिशाप है और यह मत भारत के भी माध्यस्थम् समुदाय के वर्ग के लिए परकीय नहीं है । तथापि, आयोग इस मत का समर्थन नहीं करता । आयोग यह मान्यता प्रदान करता है कि न्यायिक मशीनरी माध्यस्थम् प्रक्रिया को आवश्यक सहयोग प्रदान करती है । वि-नय के प्रमुख शिक्षाविदों की टिप्पणी के अनुसार, माध्यस्थम् का विरोधाभास यह है कि यह उन्हीं लोक प्राधिकारियों की सहायता चाहता है जिससे यह स्वयं मुक्त होना चाहता है ।

20. माध्यस्थम् में न्यायपालिका की भूमिका पर किसी चर्चा के लिए स्प-टतः आरंभिक बिंदु अधिनियम की धारा 5 है जो स्वयं मोडल विधि के अनुच्छेद 5 से व्युत्पन्न है जो माध्यस्थम् प्रक्रिया में न्यायिक समावेशन को कम करना और परिणामतः माध्यस्थम् अधिकरण की शक्तियों को बढ़ाना चाहता है । व-र्ं 1940 अधिनियम की परिवर्तित व्यवस्था से स्थिति भारत में बिल्कुल अधिक सख्त है जो न्यायपालिका के लिए अधिक व्यापक और सक्रिय भूमिका की परिकल्पना करता है । तथापि, अधिनियम

में न्यायालयों की अल्पीकृत भूमिका और माध्यस्थम् अधिकरण को प्रदत्त वर्धित शक्तियों के होते हुए भी, न्यायिक हस्तक्षेप और न्यायिक अवरोध के बीच संतुलन का सावधानीपूर्वक अंशशोधन करना आवश्यक है । इस संदर्भ में, ओ. पी. मल्होत्रा की पुस्तक, माध्यस्थम् विधि और व्यवहार (प्रथम संस्करण, 2002, लेक्सिस नेक्सिस) के प्राक्कथन में लार्ड मोस्टिल के शब्दों का निर्दि-ट किया जा सकता है -

''सर्वप्रथम, न्यायालयों और माध्यस्थम् प्रक्रिया के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध का सर्वाधिक महत्व है । इसमें हमेशा सूक्ष्म संतुलन अंतवर्लित है, क्योंकि किसी न्यायाधीश की प्रवृत्ति यह देखना है कि न्याय हो और अन्याय जहां-कहीं भी, वह पाता है उसे ठीक करे ; और यदि यह माध्यस्थम् में पाया जाता है तो क्यों न्यायाधीश हस्तक्षेप करने की आवश्यकता महसूस करता है । दूसरी ओर ऐसे लोग जो माध्यस्थम् की दुनिया में सक्रिय हैं, इसकी स्वैच्छिक प्रकृति पर बल देते हैं और यह तर्क करते हैं कि सिद्धांततः न्यायालयों के लिए ऐसे विवादों पर स्वयं चिंतित होना गलत है जिसे पक्षकार औपचारिक रूप से स्वैच्छिक न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा कारित समय और व्यय की बर्बादी के कारण उनसे वापस लेने का विकल्प चुनते हैं । कुछ हद तक दोनों मत सही है और ऐसा ही है ; समस्या उनमें से प्रत्येक को उचित महत्व देने की है । ठीक पिछली शताब्दी में माध्यस्थम् के प्रबंध का यह दुःखद पहलू था कि ऐसी विधिसम्मत बहस जो एक या दूसरे पक्ष में की जा सकती है, कम से कम कुछ दृ-टांतों में बिल्कुल अनावश्यक प्रबलता के साथ व्यक्त की गई ।

भाग्यवश, हाल के व-र्ों में बुद्धिमान काउंसेल अधिक हावी हुए और मेरा यह विश्वास है कि सामान्यतः प्रक्रियागत विभाजन के दोनों पक्षों की ओर से यह मान्यता प्रदान की गई है कि न्यायालयों को ऐसी प्रक्रिया में जो देश या विदेश में वाणिज्य हेतु महत्वपूर्ण है, अत्युत्तम या विरोधी नहीं, बल्कि भागीदार होना चाहिए.....।

संचालन कार्यकाल के भीतर, अंतरा-ट्रीय माध्यस्थम् आजीविका नहीं बल्कि कारबार हो गया है जिसमें प्रायः काफी अधिक राशि अंतवर्लित होती है और सभी संबद्ध व्यक्तियों के लिए पर्याप्त धनीय उपार्जन का साधन बन जाता है । शायद अनिवार्यतः ऐसे सभी लोग जो भाग लेते हैं, निश्चिततः सबमें नहीं तो कम से कम कुछ के मानकों में समवर्ती गिरावट आयी है । इस बारे में हाथ मलना कुछ ठीक नहीं है, यह ऐसा तथ्य है जिसका मुकाबला किया जाना है और उनका मुकाबला करने के भाग के रूप में यह मान्यता प्रदान करना है कि अभिजात दबाव का प्रभाव और वस्तुतः सामान्य सम्मान क्षीण हो गया है और कुछ अन्य साधन उन लोगों से

जो कार्य नहीं करेंगे, इस स्वैच्छिक प्रक्रिया के संरक्षण के लिए अपनाए जाने चाहिए जैसा वे सहमत हुए हैं । अंत में, आप इसे पसंद करें या न करे, केवल न्यायालय ही यह संरक्षण प्रदान कर सकते हैं और स्वायत्तता पक्षकार के अधिकांश उत्साही प्रस्तावक यह मान्यता प्रदान करने के लिए आबद्ध है कि उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य की न्यायिक शाखा का अवलंब लेना चाहिए कि माध्यस्थम् के करार को कुछ हद तक प्रभावकारी बनाया जाना चाहिए । यह अच्छी शिकायत नहीं है कि न्यायाधीशों को माध्यस्थम् से बाहर रखा जाए क्योंकि माध्यस्थम् तब तक समृद्ध नहीं हो सकता जब तक वे तैयार हों और दरवाजे पर प्रतीक्षा करें और केवल विरले को ही कमरे में आने दिया जाए ।

तथापि, समानतः यह महत्वपूर्ण है कि न्यायालयों द्वारा मान्यता द्वारा यह संतुलन बनाए रखा जाता है कि क्योंकि माध्यस्थम् समुदाय के हितों को पूरा करने के लिए विद्यमान है इसी प्रकार उनकी निजी शक्तियां न्यायिकेतर प्रक्रिया जिसे पक्षकारों ने अपनाने का चयन किया है, को सहयोग देने के लिए प्रदत्त की गई है, न कि चालाकी से उसका स्थान लेने के लिए ऐसी कोई जो ऐसे विनिश्चय हेतु न्यायिक हैसियत में सामना किया है जो दो-नपूर्ण प्रतीत होता है, इस समय सही-सही मुद्दे को विनिश्चित करने के मनोवेग से सहानुभूति प्रदान कर सकता है ; फिर भी, माध्यस्थम् के क्षेत्र में, मनोवेग को हर हालत में, उन परिस्थितियों के सिवाए जहां विधानमंडल ने स्प-टतः अपील का अधिकार सृजित किया है, रोका जाना चाहिए .....।

संक्षेपतः यही विचार माध्यस्थम् में प्रक्रियाओं को लागू होते हैं । पक्षकारों ने मध्यस्थता द्वारा सुलझाने का चयन किया है न कि मुकदमा लड़ने द्वारा । ऐसा कर उन लोगों ने सुसंगत विधान या संस्थागत नियमों द्वारा अधिकथित प्रक्रियाओं का चयन किया है । यदि ऐसा कुछ नहीं हो, तो स्वयं मध्यस्थ को उन्हें जानबूझकर अपनी प्रक्रियाएं अपनाने का विकल्प न्यस्त करती हैं । यह एक अन्य विकल्प है जिसका न्यायालय को सम्मान करना चाहिए । न्यायाधीश सोच सकता है और ठीक ही सोचता है कि विकल्प अबुद्धिसंगत है कि भिन्न प्रक्रिया प्रस्तुत विवाद को बेहतर उपयुक्त होगी । या पुनः ठीक ही वह विश्वास कर सकता है कि जो मध्यस्थ ने किया, वह अक्षम या कुछ मात्रा तक अनुचित था । किंतु उसका कार्य मामले के पुनर्विचारण के लिए नहीं है, किंतु मात्र यह सुनिश्चित करना है कि विवाद समाधान का तरीका जिस पर पक्षकार सहमत है, वह जिसे वे परिणामस्वरूप प्राप्त कर चुके हैं । फिर भी, जहां सहमत तरीके से विपथन ऐसी मात्रा तक है जिससे वास्तव में अन्याय हुआ है तो क्या न्यायालय हस्तक्षेप करने का हकदार है और फिर भी हस्तक्षेप इस प्रकार किया जाए जिससे कि प्रक्रिया के आगे बढ़ाने के संवेग में

न्यूनतम दखलंदाजी कारित हो सके ।''

21. रिपोर्ट की तैयारी के अनुक्रम में, और प्रस्तावित संशोधनों के पीछे प्रकरण के रूप में, आयोग ने न्यायिक हस्तक्षेप और न्यायिक नियंत्रण के बीच उचित संतुलन के लिए मध्यम मार्ग अपनाने का प्रयास किया है ।

न्यायालयों में और अधिकरण के समक्ष विलंब तथा विनिधान संधि जोखिम

22. माध्यस्थम् कार्यवाहियों में न्यायिक हस्तक्षेप माध्यस्थम् प्रक्रिया में विलंब को काफी बढ़ाता है और अंततः माध्यस्थम् के फायदे को नकारता है । ऐसे विलंब के दो कारण माने जा सकते हैं । पहला, न्यायिक प्रणाली काम से अति-बोझिल है और मामलों, विशे-कर वाणिज्यिक मामलों का निपटान गति और शीघ्रता जो अपेक्षित है के अनुरुप पर्याप्त दक्षता के साथ करने में असमर्थ है । दूसरा, न्यायिक हस्तक्षेप का वर्जन (अधिनियम की धारा 5 के अस्तित्व के बावजूद) लगातार भारतीय न्यायपालिका द्वारा अल्पमत अवसीमा में रहता है जो ऐसे न्यायालय में कई और मामले परिणत करते हैं जो अधिनियम से उद्भूत होते हैं या उससे संबंधित है ।

23. दो समस्याओं में से, पहला वृहत् और अधिक व्यापक समस्या का भाग है जो भारतीय न्यायपालिका की स्थानीय समस्या है और जिसका सुधार किया जाना पृथक् अध्ययन का भाग गठित करता है । तथापि, कुछ सुझावों का उल्लेख किया जा सकता है । आयोग यह पाता है कि अधिकांश न्यायालयों में माध्यस्थम् मामलों को एक साथ कई व-र्षों तक लंबित रखा जाता है और एक कारण माध्यस्थम् मामलों पर विचार करने हेतु न्यायपीठों की कमी है । कोई भी व्यक्ति दिल्ली उच्च न्यायालय के अनुभव का फायदा उठा सकता है जहां माध्यस्थम् संबंधी मामलों के लिए पृथक् और समर्पित न्यायपीठें बनाए रखने की पद्धति है । इसके परिणामस्वरूप न केवल बेहतर और शीध्र विनिश्चय होता है बल्कि माध्यस्थम् संबंधी मामलों पर विचार करने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय की अधिकारिता को चुनने हेतु पक्षकारों के विश्वास में भी वृद्धि होती है । सरकार को दिल्ली उच्च न्यायालय के इस अनुभव पर विचार करना चाहिए और मुख्य न्यायमूर्तियों से विशि-ट और समर्पित माध्यस्थम् न्यायपीठें सृजित करने का अनुरोध करना चाहिए । आयोग यह भी विश्वास करता है कि निरर्थक और भ्रामक कार्रवाइयों के विरुद्ध अनुतो-न उपलब्ध कराने का एक तरीका वास्तविक खर्च की व्यवस्था को लागू करना है जैसा यू. के. और अन्य अधिकारिताओं में भी कार्यान्वित है और जिसे अधिनियम की प्रस्तावित धारा 6क में स्थान दिया गया है ।

24. इस संदर्भ में आगे संशोधनों के दो समूह का प्रस्ताव किया गया है । पहला, यह मत व्यक्त किया गया है कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों के आरंभ में ही मध्यस्थों की नियुक्ति हेतु काफी समय लगता है क्योंकि धारा 11 के अधीन आवेदन कई व-र्षों तक

लंबित रहते हैं । इस संदर्भ में, आयोग ने कुछ संशोधनों का प्रस्ताव किया है । आयोग ने वर्तमान ''उच्च न्यायालय'' और ''उच्चतम न्यायालय'' के मुख्य न्यायमूर्ति में निहित नियुक्त करने की शक्ति की स्कीम को परिवर्तित करने का प्रस्ताव किया है और अभिव्यक्ततः स्प-ट किया है कि ''नियुक्ति'' की शक्ति के प्रत्यायोजन (माध्यस्थम् करार के अस्तित्व/अकृतता से संबंधित वि-कर्-ा के प्रतिकूल) को न्यायिक कार्य नहीं माना जाएगा । यह विधि को तर्कसंगत बनाएगा और उच्च न्यायालय और/या उच्चतम न्यायालय को विशि-ट, बाह्य व्यक्तियों या संस्थाओं को नियुक्त करने की शक्ति (गैर-न्यायिक कार्य होने के कारण) प्रत्यायोजित करने हेतु भारी प्रोत्साहन दिलाएगा । आयोग ने आगे धारा 11(7) को संशोधित करने की सिफारिश की है जिससे कि (माध्यस्थम् करार के अस्तित्व/अकृतता से संबंधित) उच्च न्यायालय का विनिश्चय अंतिम हो जहां मध्यस्थ की नियुक्ति हो चुकी है और इस प्रकार गैर-अपीलनीय हैं । आयोग आगे धारा 11 को जोड़ने का प्रस्ताव करता है जो न्यायालय से विपक्षी पक्षकार पर नोटिस की तामीली से साठ दिनों के भीतर मामले का निपटान करने का प्रयास करने की अपेक्षा करती है ।

25. इसी प्रकार, आयोग ने यह पाया है कि धारा 34 और 38 के अधीन माध्यस्थम् पंचाटों की चुनौतियां इसी प्रकार कई व-र्ों तक लंबित रखी जाती हैं । इस संदर्भ में, आयोग धारा 34(5) और 48(4) के जोड़ने का प्रस्ताव करता है जो यह अपेक्षा करती है कि उन धाराओं के अधीन आवेदन यथाशीघ्र और किसी भी दशा में नोटिस की तामील की तारीख से एक व-र् की अवधि के भीतर निपटाए जाएंगे । अधिनियम की धारा 48 के अधीन आवेदनों की दशा में, आयोग ने आगे धारा 48(3) के अधीन समय सीमा का उपबंध किया है जो धारा 34(3) में उपवर्णित समय-सीमा के समतुल्य है और यह सुनिश्चित करना उसका लक्ष्य है कि पक्षकार इस धारा के अधीन गंभीरता से अपने उपचार ग्रहण करें और यथाशीघ्र न्यायिक फोरम को आवेदन करे जो पश्चात् सोच-विचार के माध्यम से न हो । इसके अतिरिक्त, यह सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम की 23 में नया स्प-टीकरण प्रस्तावित है कि प्रतिदावा और मुजराई का न्याय निर्णयन प्रत्यर्थी द्वारा पृथक्/नए निर्देश की ईप्सा के बिना किसी मध्यस्थ द्वारा किया जा सकता है, बशर्ते कि वह माध्यस्थम् करार की व्याप्ति के भीतर आता हो । आयोग भावी मध्यस्थों द्वारा माध्यस्थम् को पूरा करने हेतु पर्याप्त समय लगाने और यथाशीघ्र पंचाट देने की अपनी योग्यता के संबंध में आज्ञापक प्रकटन करने की भी सिफारिश की है ।

26. यह सिफारिश की गई है कि अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों के मामले में, जहां संव्यवहार में महत्वपूर्ण विदेशी तत्व है और कम से कम एक पक्षकार विदेशी है, वहां सुसंगत ''न्यायालय'' जो माध्यस्थम् करार से उद्भूत कार्यवाहियों को ग्रहण करने

के लिए सक्षम है, उच्च न्यायालय होना चाहिए चाहे ऐसा उच्च न्यायालय मामूली आरंभिक अधिकारिता को प्रयोग न करता हो । यह प्रत्याशित है कि यह इस बात को सुनिश्चित करेगा कि विदेशी पक्षकारों वाले अंतरर-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों की यथाशीघ्र और उच्च न्यायालय स्तर के वाणिज्यिक उन्मुख न्यायाधीशों द्वारा सुनवाई की जाएगी । धारा 48 के प्रस्तावित संशोधनों (यथा उपरोक्त उपदर्शित) का भी आशय ऐसे ही लक्ष्य की प्राप्ति है । यह केवल विदेशी निवेशकों में विश्वास पैदा करने के लिए ही नहीं बल्कि भारत सरकार द्वारा अन्य देशों के साथ परक्रामण सुसंगत विनिधान संधि के अधीन विदेशी निवेशकों द्वारा दावों से भारत सरकार को झेलने वाले जोखिम को समाप्त करना है । **ह्वाइट इंडस्ट्रीज आस्ट्रेलिया लि.** बनाम **दि रिपब्लिक आफ इंडिया, यू.एन.सी. ट्राल अंतिम पंचाट** (30 नवंबर, 2011) में माध्यस्थम् अधिकरण का पंचाट सरकार को अनुस्मारक के रूप में है कि सरकार सारवान ऐसे संभाव्य दायित्वों से बचने के लिए न्यायिक प्रणाली में अतिशीघ्र सुधार को लागू करे जो प्रणाली में वर्तमान अंतनिर्हित विलंब से प्रोद्भूत होते हैं ।

27. दूसरी समस्या जो अधिनियम में प्रस्तावित सुसंगत संशोधनों द्वारा दूर किए जाने की ईप्सा की गई है, माध्यस्थम्-पूर्व (धारा 8 और 11) और माध्यस्थम्-पश्चात् प्रक्रम (धारा 34) सहित - माध्यस्थम् प्रक्रिया के विभिन्न प्रक्रमों पर न्यायिक हस्तक्षेप की अवसीमा को बढ़ाना है । इनकी चर्चा समुचित स्थानों पर की गई है ।

माध्यस्थम्-पूर्व न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति और प्रकृति

28. अधिनियम ऐसी स्थितियों को मान्यता प्रदान करता है जहां न्यायालय का हस्तक्षेप माध्यस्थम्-पूर्व प्रक्रम अर्थात् माध्यस्थम् अधिकरण के गठन के पूर्व परिकल्पित है जो भाग 1 माध्यस्थम्ों की दशा में धारा 8, 9, 11 और भाग 2 माध्यस्थम्ों की दशा में धारा 45 सम्मिलित करता है । धारा 8, 45 और धारा 11 भी ''माध्यस्थम् को निर्देश'' और ''अधिकरण की नियुक्ति'' से संबंधित है जो प्रत्यक्षतः अधिकरण के गठन और माध्यस्थम् कार्यवाहियों के कार्यकरण को प्रभावित करता है । अतः, उनके प्रचालन का माध्यस्थम्ों के ''संचालन'' पर सीधा और महत्वपूर्ण प्रभाव है । धारा 9 एकमात्र अंतरिम अनुतो-न प्राप्त करने के प्रयोजन हेतु होने के कारण यद्यपि पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने की संभावना रखती है फिर भी यह उस तरह से माध्यस्थम् के ''संचालन'' को प्रभावित नहीं करती जैसे ये अन्य उपबंध हैं । इस संदर्भ में, आयोग ने इन उपबंधों की कार्यशैली की परीक्षा की और विचार-विमर्श किया और कतिपय संशोधनों को प्रस्तावित किया ।

29. उच्चतम न्यायालय को, विशे-ाकर अधिनियम की धारा 11 के संदर्भ में अनुज्ञेय माध्यस्थम्-पूर्व न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति और प्रकृति पर विचार करने का अवसर

मिला है । तथापि, दुर्भाग्यवश उच्चतम न्यायालय के समक्ष इन निबंधनों में प्रश्न विरचित किया गया कि क्या ऐसी शक्ति ''न्यायिक'' या ''प्रशासनिक'' शक्ति है - जो निम्न के बारे में ऐसे नाम/विवरण के पीछे छिपे वास्तविक मुद्दे को धुंधला कर देता है -

- ऐसी शक्तियों की व्याप्ति - अर्थात् ऐसे बहस की व्याप्ति जो कोई न्यायालय (मुख्य न्यायमूर्ति) यह विनिश्चित करते समय विचार करेगा कि क्या मध्यस्थ नियुक्त किया जाए या नहीं - अर्थात् क्या माध्यस्थम् करार विद्यमान है, क्या यह अकृत और शून्य है, क्या यह शून्यकरणीय है, आदि ; और इनमें किसके विनिश्चय के लिए माध्यस्थम् अधिकरण को सौंपा जाना चाहिए ।

- ऐसे हस्तक्षेप की प्रकृति - अर्थात् क्या न्यायालय (मुख्य न्यायमूर्ति) को विस्तृत विचारण के पश्चात् मुद्दों पर विचार करना होगा और क्या इसका अंतिम रुप से विनिश्चय किया जाएगा या अवधारण के लिए माध्यस्थम् अधिकरण पर छोड़ा जाएगा ।

30. कई मामलों की पराका-ठा **एस.बी.पी.** बनाम **पटेल इंजीनियरिंग,** (2005)8 एस. सी. सी. 618 वाले मामले के विनिश्चय में होने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 11 के अधीन मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति ''न्यायिक'' शक्ति है । हस्तक्षेप की व्याप्ति से संबंधित इस निर्णय के छिपे मुद्दों को न्यायमूर्ति रवीन्द्र द्वारा **नेशनल इन्स्योरेंश कं. लि.** बनाम **बोधारा पोलीफैब प्रा. लि.,** (2009)1 एस. सी. सी. 267 वाले मामले में बाद में स्प-ट किया गया है, जहां उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अधिकथित किया -

1. मुद्दे (प्रथम प्रवर्ग) इस प्रकार है जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति/उसके अभिहित को विनिश्चित करना होगा :

(क) क्या आवेदन करने वाले पक्षकार ने उचित उच्च न्यायालय में आवेदन किया है ?

(ख) क्या कोई माध्यस्थम् करार है और क्या ऐसा पक्षकार जिसने अधिनियम की धारा 11 के अधीन आवेदन किया है, ऐसे करार का पक्षकार है?

2. मुद्दे (द्वितीय प्रवर्ग) इस प्रकार है जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति/उसके अभिहित को विनिश्चित करने के लिए चुना है :

(क) क्या दावा मृत (दीर्घ वाधित) दावा या सजीव दावा है ?

(ख) क्या पक्षकारों ने अपने पारस्परिक अधिकार और बाध्यता का

समाधान अभिलिखित कर या आक्षेप बिना अंतिम संदाय प्राप्त कर संविदा/ संव्यवहार को अंतिम रूप दिया है ?

3. मुद्दे (तृतीय प्रवर्ग) इस प्रकार हैं जिन्हें मुख्य न्यायमूर्ति/उसके अभिहित को अनन्यतः माध्यस्थम् अधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए :

(क) क्या कोई दावा माध्यस्थम् खंड के भीतर आता है (उदाहरणार्थ, ऐसा मामला जो विभागीय प्राधिकारी के अंतिम विनिश्चय के लिए आरक्षित है और माध्यस्थम् से अपवादित या अपवर्जित है) ?

(ख) माध्यस्थम् में अंतवर्लित किसी दावे का गुणागुण ।

31. आयोग का यह मत है कि इस संदर्भ में, धारा 11 के संदर्भ में लागू न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति और प्रकृति से संबंधित वही कसौटी अधिनियम की धारा 8 और 45 को भी लागू होनी चाहिए - क्योंकि न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति और प्रकृति परिवर्तित नहीं होनी चाहिए चाहे (माध्यस्थम् करार को विफल करने का आशय रखने वाला) पक्षकार माध्यस्थम् करार के निबंधनानुसार माध्यस्थम् नियुक्त करने से इनकार करता है या ऐसे माध्यस्थम् करार के होते हुए भी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही आरंभ करता है ।

32. हस्तक्षेप की प्रकृति के संबंध में (अधिनियम की धारा 45 के संदर्भ में) विधि की प्रतिपादना **शिन इट्स् केमिकल्स कं. लि.** बनाम **अक्ष ओपटीफाइबर,** (2005)7 एस.सी.सी. 234 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में पाई जा सकती है जहां उच्चतम न्यायालय ने मुद्दों/संविवाद को केवल प्रथमदृ-ट्या विचार करने के पक्ष में निर्णय दिया ।

33. इस संदर्भ में, आयोग ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 और 11 को संशोधित करने की सिफारिश की । न्यायिक हस्तक्षेप की व्याप्ति केवल ऐसी स्थितियों तक निर्बंधित है जहां न्यायालय/न्यायिक प्राधिकारी यह नि-क-र्ा निकालता है कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है या अकृत और शून्य है । जहां तक हस्तक्षेप की प्रकृति का संबंध है, यह सिफारिश की जाती है कि न्यायालय/न्यायिक प्राधिकारी का प्रथमदृ-ट्या माध्यस्थम् करार को चुनौती देने वाले तर्क के विरुद्ध समाधान होने की दशा में, वह मध्यस्थ नियुक्त करेगा और/या यथास्थिति, माध्यस्थम् के पक्षकारों को निर्दि-ट करेगा । संशोधन यह परिकल्पित करता है कि न्यायिक प्राधिकारी पक्षकारों को माध्यस्थम् को निर्दि-ट नहीं करेगा यदि केवल वह पाता है कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है या यह कि यह अकृत और शून्य है । यदि न्यायिक प्राधिकारी की यह राय है कि प्रथमदृ-ट्या माध्यस्थम् करार विद्यमान है, तब वह विवाद माध्यस्थम् को निर्दि-ट

करेगा, और अंतिम रूप से माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अवधारित किए जाने हेतु माध्यस्थम् करार के अस्तित्व पर छोड़ देगा । तथापि, यदि न्यायिक प्राधिकारी यह नि-क-र्ा निकालता है कि करार विद्यमान नहीं है, तो नि-क-र्ा अंतिम होगा न कि प्रथमदृ-ट्या । संशोधन यह भी परिकल्पित करता है कि ऐसा निश्चायक अवधारण किया जाएगा कि क्या माध्यस्थम् करार अकृत और शून्य है । इस स्थिति में कि न्यायिक प्राधिकारी विवाद माध्यस्थम् को निर्दि-ट करता है और/या क्रमशः धारा 8 और 11 के अधीन मध्यस्थ नियुक्त करता है, ऐसा विनिश्चय अंतिम और गैर-अपीलनीय होगा । पक्षकारों को माध्यस्थम् को निर्दि-ट करने की इनकारी या मध्यस्थ नियुक्त करने की इनकारी की दशा में ही धारा 37 के अधीन अपील की जा सकती है ।

देशी पंचाट का अपास्त किया जाना और विदेशी पंचाट की मान्यता/प्रवर्तन

34. एक बार माध्यस्थम् पंचाट किए जाने पर व्यथित पक्षकार ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकेगा । अधिनियम की धारा 34 अंतरर्रा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के परिणामस्वरूप उद्भूत देशी पंचाट और देशी पंचाट से अपास्त करने के बारे में है । जबकि धारा 48 देशी पंचाटों के प्रवर्तन की शर्तों के बारे में है । अधिनियम के वर्तमान प्रारुपण के अनुसार अपास्त करने के आधार (धारा 34 के अधीन) और प्रवर्तन की इनकारी की शर्त (धारा 48) समवि-नयक हैं । अतः, वर्तमान प्रारुपित अधिनियम पंचाट के सभी तीन प्रकार - विशुद्धतः देशी पंचाट (अर्थात् अंतरर्रा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के परिणामस्वरूप उद्भूत न हुआ देशी पंचाट), अंतरर्रा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में देशी पंचाट और विदेशी पंचाट पर एक जैसा विचार करता है । आयोग विश्वास करता है कि इससे कुछ समस्याएं कारित हुई है । विशुद्धतः देशी पंचाट की दशा में न्यायिक हस्तक्षेप की वैधता ऐसे मामलों की तुलना में काफी अधिक है जहां न्यायालय किसी अंतरर्रा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में विदेशी पंचाट या देशी पंचाट की शुद्धता की परीक्षा कर रहा है ।

35. यही कारण है कि आयोग ने ऐसे विशुद्धतः देशी पंचाट, जो न्यायालय द्वारा भी अपास्त किए जा सकेंगे यदि न्यायालय इस नि-क-र्ा पर पहुंचता है कि ऐसा पंचाट ''पंचाट को देखने मात्र पर दिखाई पड़ने वाली प्रकट अवैधता'' द्वारा दू-ित है, के बारे में धारा 34(2क) को जोड़ने की सिफारिश की । संतुलन बनाए रखने और अत्यधिक हस्तक्षेप से बचने के लिए प्रस्तावित धारा 34(2क) के प्रस्तावित परंतुक में यह स्प-ट किया गया है कि ''ऐसे पंचाट को मात्र विधि के गलत प्रयोग या साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के आधार पर अपास्त नहीं किया जाएगा ।'' आयोग यह विश्वास करता है कि न्यायपालिका और माध्यस्थम् विधि के अन्य उपयोक्ता जो विशुद्धतः देशी पंचाटों के विरुद्ध काफी क्षतिपूर्ति की प्रत्याशा करते है और हमारे देश की व्याप्त परिस्थितियों में

वैधतः ऐसा ही है, के भय को क्षमित करने में काफी समय लगेगा । यह **ओ.एन.जी.सी.** बनाम **शा पाइप्स लि.** (2003) 5 एस.सी.सी. 705 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के गैर आशयित परिणामों को भी दूर करेगा जिसका यद्यपि विशुद्धतः देशी पंचाट के संदर्भ में अधिनियम की कानूनी भा-ा में अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों और विदेशी पंचाटों से उद्भूत दोनों पंचाटों को समानतः लागू होने के लिए विस्तारित किए जाने का दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव था । धारा 28(3) का संशोधन भी इसी प्रकार **ओ.एन.जी.सी.** बनाम **शा पाइप्स लि.,** (2003) 5 एस.सी.सी. 705 वाले मामले के उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के आधार को एकमात्र दूर करने के लिए और इसलिए कि अधिकरण द्वारा संविदा के निबंधन में उल्लंघन का परिणाम विधितः पंचाट को अपास्त होने के योग्य बनाना नहीं होना चाहिए, हेतु प्रस्तावित किया गया है । आयोग यह विश्वास करता है कि लोकहित आधार का व्यक्त निर्बंधन करते हुए धारा 28(1) में इसी प्रकार का कोई संशोधन आवश्यक नहीं है (जैसा नीचे उपवर्णित है) ।

36. यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने **श्री लाल महल** बनाम **प्रोगेट्टो ग्रानो स्पा,** (2014) 2 एस. सी. सी. 433 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि **शा पाइप्स** वाले मामले में ''लोक नीति'' पद को प्रदत्त व्यापक अर्थान्वयन धारा 48(2)(ख) में ''भारत की लोकनीति'' के उसी पद के प्रयोग को लागू नहीं हो सकता अतः, आयोग की सिफारिशें और आगे जाती हैं और यह सुनिश्चित करने का आशय रखती है कि विशुद्धतः देशी पंचाटों के प्रकट अवैधता को दूर करने हेतु न्यायालय हस्तक्षेप की उपयुक्तता को धारा 34(2क) के परिवर्धन द्वारा प्रत्यक्षतः मान्य किया गया है न कि अप्रत्यक्षतः ''लोक नीति'' पद की व्यापक परिभा-ा प्रदान कर ।

37. इस संदर्भ में, आयोग ने आगे धारा 34 और 48 दोनों में ''लोक नीति'' की व्याप्ति के निर्बंधन की सिफारिश की । यह **रेनू सागर पावर प्लांट कं. लि.** बनाम **जनरल इलेक्टिक कं.** ए. आई. आर. 1994 एस.सी. 860 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित परिभा-ा के अनुरुप परिभा-ा नियत करने के लिए है, जहां उच्चतम न्यायालय ने विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 की धारा 7(1)(ख)(ii) के ''लोकनीति'' पद का अर्थान्वयन करते समय यह अभिनिर्धारित किया कि कोई पंचाट लोक नीति के प्रतिकूल होगा यदि ऐसा प्रवर्तन ''(i) भारतीय विधि की आधारभूत नीति ; या (ii) भारत के हित ; या (iii) न्याय या नैतिकता'' के प्रतिकूल होगा । आयोग द्वारा प्रस्तावित विरचना अधिक दृढ़ है और ''भारत के हित'' के प्रतिनिर्देश को सम्मिलित नहीं करती जो अस्प-ट है और विशे-कर अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् (धारा 48 के अधीन) से उद्भूत पंचाटों की चुनौती के संदर्भ में निर्वचनात्मक दुरुपयोग की सामर्थ्य रखती है । आयोग की विरचना के अधीन, किसी

पंचाट को केवल लोक नीति आधारों पर ही अपास्त किया जा सकता है यदि यह ''भारतीय विधि की आधारभूत नीति'' के विपरीत है या यह नैतिकता या न्याय की सर्वाधिक आधारभूत धारणा'' के प्रतिकूल है ।

विदेश स्थित माध्यस्थम्ों में न्यायिक हस्तक्षेप

38. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 2(2), अधिनियम के भाग 1 में अंतर्वि-ट, में यह उल्लेख है कि ''यह भाग वहां लागू होगा जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत में है'' तुलना में, यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि का अनुच्छेद (2) यह उपबंध करता है कि ''**अनुच्छेद 8,9,35 और 36 के सिवाए,** इस विधि के उपबंध केवल वहीं लागू होंगे यदि माध्यस्थम् का स्थल इस राज्य के राज्यक्षेत्र में हैं ।'' अतः, **भाटिया इंटरनेशनल** बनाम **इंटरबल्क ट्रेडिंग,** एस. ए. (2002) 4 एस. सी. सी. 105 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष और **भारत एल्यूमीनियम कं.** बनाम **कैसर एल्यूमीनियम और कं.** (2012) 9 एस. सी. सी. 552 (इसके पश्चात ''बाल्को'') वाले मामले में पांच न्यायाधीश की न्यायपीठ के समक्ष मुख्य मुद्दा यह था कि क्या भारतीय कानून से ''केवल'' शब्द के अपवर्जन का यह निहितार्थ होगा कि अधिनियम का भाग 1 ऐसी कुछ स्थितियों में भी लागू होगा जहां माध्यस्थम् भारत से बाहर संचालित किया गया था ।

39. **भाटिया** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भाग 1 आज्ञापक रूप से भारत में हुए सभी माध्यस्थम्ों को लागू होता है । इसके अतिरिक्त, भाग 1 भारत से बाहर संचालित माध्यस्थम्ों को लागू होगा जब तक यह व्यक्ततः या विवक्षितः अपवर्जित न हो । जबकि भाटिया वाला मामला धारा 9 से उद्भूत था वहीं उच्चतम न्यायालय द्वारा वही सिद्धांत धारा 11 और 34 को भी विस्तारित किया गया (**वेंचर ग्लोबल** बनाम **सत्यम् कंप्यूटर,** (2008) 4 एस.सी. सी. 190 ; **इंडटेल टेक्निकल सर्विसेज** बनाम **डब्ल्यू. एस. एटकिंस,** (2008) 10 एस. सी. सी. 308 ; **साईंटेशन इन्फोवेयर लि.** बनाम **इक्विनाक्स कारपोरेशन,** (2009) 7 एस. सी. सी. 220 ; **डोजको इंडिया** बनाम **दूसन इंफ्रास्ट्रक्चर,** (2011) 6 एस. सी. सी. 179 ; **वीडियोकान इंडस्ट्रीज** बनाम **भारत संघ,** (2011) 6 एस. सी. सी. 161 वाले मामलों में) । परिणामतः, भारतीय न्यायालय लंबित माध्यस्थम् में अनुतो-न प्रदान करने, मध्यस्थ नियुक्त करने और माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने में सक्षम थे चाहे माध्यस्थम् का संचालन भारत के बाहर किया गया हो । ये शक्तियां विद्यमान थी जब तक भाग 1 को अभिव्यक्ततः या विवक्षितः अपवर्जित नहीं किया जाता । इसके अतिरिक्त, विवक्षित अपवर्जन का अर्थान्वयन विधि के प्रतिकूल सिद्धांतों के आधार पर नहीं बल्कि तदर्थ रीति से निकाला गया था । यह स्थिति अब बाल्को का अनुसरण करने के कारण उलट गई है ।

40. उच्चतम न्यायालय ने बाल्को में यह विनिश्चित किया कि अधिनियम का भाग 1 और भाग 2 पारस्परिकतः एक दूसरे के अनन्य हैं । संसद् का आशय कि अधिनियम राज्यक्षेत्रीय प्रकृति का है और धारा 9 और 34 तभी लागू होंगी जब माध्यस्थम् का स्थान भारत में है । स्थान माध्यस्थम् के ''गुरुत्व का केंद्र'' है और जहां दो विदेशी पक्षकार भारत में माध्यस्थम् करते हैं वहां भी भाग 1 लागू होगा और धारा 2(7) के आधार पर पंचाट ''देशी पंचाट'' होगा । उच्चतम न्यायालय ने माध्यस्थम् के ''स्थान'' को न्यायिक स्थान होने के रुप में मान्यता दी ; तथापि, अंतरा-ट्रीय पद्धति के अनुरुप यह मत व्यक्त किया गया कि माध्यस्थम् सुनवाई माध्यस्थम् के स्थान से भिन्न अवस्थान पर की जा सकती है । अतः ''स्थान'' और ''जगह'' के बीच विभेद को मान्यता प्रदान की गई । ऐसे परिदृश्य में, केवल यदि स्थान भारत में अवधारित किया जाता है तो भाग 1 लागू होगा । यदि स्थान विदेश में था तो भाग 1 लागू नहीं होगा । यदि भाग 1 को अभिव्यक्ततः सम्मिलित किया गया, तो ''इसका यह अर्थ होगा कि पक्षकारों को संविदाजात रूप में माध्यस्थम् अधिनियम, 1996 के उन उपबंधों से आयातित किया गया जिनका संबंध उनके माध्यस्थम् के आंतरिक संचालन से है और जो (विदेशी) प्रक्रियागत विधि/क्यूरियल विधि के आज्ञापक उपबंधों से असंगत नहीं है ।'' इसका उपयोग भारतीय न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त करने के लिए नहीं किया जा सकता । तथापि, बाल्को के विनिश्चय को अभिव्यक्ततः भवि-यलक्षी प्रभाव दिया गया और निर्णय की तारीख के पश्चात् नि-पादित माध्यस्थम् करारो को लागू किया गया ।

41. जहां बाल्को का विनिश्चय उचित दिशा में एक कदम है और विदेशी माध्यस्थम्ों में न्यायिक हस्तक्षेप को काफी कम करेगा, वहीं आयोग यह महसूस करता है कि अब भी ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जिसमें समस्याएं पैदा होने की संभावनाएं हैं ।

(i) जहां पक्षकार की आस्तियां भारत में अवस्थित हैं और इस बात की संभावना है कि पक्षकार निकट भवि-य में अपनी आस्तियां मिटा देगा वहां अन्य पक्षकार के पास प्रभावी उपचार नहीं होगा यदि माध्यस्थम् का स्थान विदेश में है । बाद वाले पक्षकार के पास दो संभव उपचार होंगे किंतु कोई भी प्रभावी नहीं होगा । पहला, बाद वाला पक्षकार विदेशी न्यायालय या स्वयं माध्यस्थम् अधिकरण से अंतरिम आदेश अभिप्राप्त कर सकता है और अंतरिम आदेश द्वारा सृजित अधिकार को प्रवृत्त कराने के लिए सिविल वाद फाइल कर सकता है । अंतरिम आदेश नि-पादन अर्जी फाइल कर प्रत्यक्षतः प्रवृत्त नहीं किया जाएगा क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और 44क के प्रयोजनों के लिए ''निर्णय'' या ''डिक्री'' के रूप में अर्हित नहीं होगा (जो विदेशी निर्णयों को प्रवृत्त कराने के तंत्र का उपबंध नहीं करता) । दूसरा, उस दशा में कि पहला पक्षकार विदेशी आदेश के

निबंधनों का पालन नहीं करता, बाद वाला पक्षकार विदेशी न्यायालय में अपमान की कार्यवाही आरंभ कर सकता है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और 44क के अधीन विदेशी न्यायालय के निर्णय को प्रवृत्त करा सकता है । इनमें से किसी उपचार से उसके द्वारा अभिप्राप्त अंतरिम अनुतो-न को प्रवृत्त कराने की ईप्सा रखने वाले पक्षकार को व्यावहारिक उपचार उपलब्ध कराने की संभावना नहीं है ।

ऐसी दशा में, इस बात की स्प-ट संभावना है कि विदेशी पक्षकार अपने पक्ष में यह चरितार्थ करने के लिए ही माध्यस्थम् पंचाट अभिप्राप्त करेगा कि सत्ता जिसके विरुद्ध उसे पंचाट प्रवृत्त कराना है, अपनी आस्तियों से हीन हो गई है और एक खोखली कंपनी में परिवर्तित हो गई है ।

(ii) यद्यपि बाल्को का विनिश्चय यह सुनिश्चित करने के लिए भवि-यलक्षी बनाया गया था कि तीव्र परक्रामित सौदेबाजी को रातोंरात उलट न दिया जाए क्योंकि यह ऐसी स्थिति पैदा करेगा जहां न्यायालय यह जानते हुए कि भाटिया वाले मामले का विनिश्चय अब उचित विधि नहीं है, इसे लागू करने के लिए मजबूर हो जाएंगे । जब कभी इनका सामना बाल्को-पूर्व नि-पादित माध्यस्थम् करार से उद्भूत मामलों से होगा ।

42. उपरोक्त मुद्दों का समाधान धारा 2(2), 2(2क), 20, 28 और 31 में प्रस्तावित संशोधनों के माध्यम से किया गया है ।

चुनौती की स्वीकृति पर पंचाट के प्रवर्तन पर स्वतः रोक

43. अधिनियम की धारा 36 यह स्प-ट करती है कि कोई माध्यस्थम् पंचाट डिक्री के रूप में धारा 38 के अधीन याचिका फाइल करने की समय की समाप्ति के पश्चात् या धारा 34 के अधीन याचिका के खारिज होने के पश्चात् ही प्रवर्तनीय होती है । दूसरे शब्दों में, धारा 34 के अधीन याचिका की विचाराधीनता माध्यस्थम् पंचाट को अप्रवर्तनीय बनाता है । उच्चतम न्यायालय ने **नेशनल एल्यूमीनियम कं. लि.** बनाम **प्रेस्स्टील एंड फैब्रीकेशन,** (2004) 1 एस. सी. सी. 540 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 36 के आधार पर, न्यायालय ने पंचाट का कोई भाग जमा करने हेतु हारे हुए पक्षकार को निदेश देते आदेश पारित करना अननुज्ञेय था । यद्यपि यह विनिश्चय धारा 42 के अधीन उच्चतम न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने की शक्तियों के संबंध में था फिर भी बम्बई उच्च न्यायालय ने **एफकान्स इंफ्रास्ट्रक्चर लि.** बनाम **बोर्ड आफ ट्रस्टीज, पोट आफ मुंबई,** 2014(1) अरब एल.आर. 512 (बाम्बे) वाले मामले में अधिनियम की धारा 9 के अधीन न्यायालय की शक्तियों को भी वही सिद्धांत लागू किया । अतः, धारा 34 के अधीन याचिका की स्वीकृति वस्तुतः जीतने वाले पक्षकार/पंचाट लेनदार के लिए प्रक्रिया को गतिहीन बनाता है ।

44. **नेशनल एल्यूमीनियम** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में वर्तमान स्थिति की आलोचना की :

> ''तथापि, हम यह ध्यान देते हैं कि अधिनियम की धारा 34 के अधीन उक्त पंचाट को चुनौती देने वाले आवेदन के फाइल किए जाने के क्षण से ही जो न्यायालय के लिए पक्षकारों को कोई शर्त लगाने का कोई विवेकाधिकार न होने के कारण पंचाट का नि-पादन का यह स्वतः निलंबन, हमारी राय में, अनुकल्पी विवाद समाधान प्रणाली माध्यस्थम् जिसका अंग है, के उद्देश्य को ही विफल करता है । हम इस नि-कर्ष पर पहुंचते हैं कि संबद्ध मंत्रालय द्वारा संसद् को ऐसे मामलों में उपयुक्त अंतरिम आदेश पारित करने हेतु सिविल न्यायालय को सशक्त करते हुए प्रस्ताव के साथ धारा 34 को संशोधित करने की सिफारिश की जाए । ऐसे संशोधन की अत्यावश्यकता को ध्यान में रखते हुए, हम नि-कपटतः यह आशा करते हैं कि विधि में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए यथाशीघ्र संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा आवश्यक कदम उठाए जाएं ।''

45. इस रिक्ति को सुधारने के लिए आयोग द्वारा अधिनियम की धारा 36 में कतिपय संशोधन सुझाए गए हैं जो यह उपबंध करते हैं कि धारा 34 के अधीन आवेदन करने मात्र से ही पंचाट को अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जाएगा ।

अंतरिम उपाय का आदेश देने की अधिकरण की शक्तियां

46. धारा 17 के अधीन, माध्यस्थम् अधिकरण को संरक्षण के अंतरिम उपाय का आदेश देने की शक्ति है जब तक पक्षकार करार द्वारा ऐसी शक्ति को अपवर्जित नहीं करते । धारा 17 एक महत्वपूर्ण उपबंध है जो माध्यस्थम् प्रणाली की कार्यशैली के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि अंतरिम उपायों के प्रयोजनों के लिए भी, पक्षकार किसी न्यायालय से आदेश की प्रतीक्षा करने के बजाए माध्यस्थम् अधिकरण के पास ऐसे अंतरिम आदेशों के प्रवर्तन के लिए किसी उपयुक्त कानूनी तंत्र की कमी के कारण धारा 17 की प्रभाविता के साथ गंभीर रूप से समझौता किया गया है ।

47. **सुन्दरम फाइनेंस लि.** बनाम **एन.ई.पी.सी. इंडिया लि.,** (1999) 2 एस. सी. सी. 479 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि धारा 17 माध्यस्थम् अधिकरण को आदेश पारित करने की शक्ति देती है फिर भी यह किसी न्यायालय के आदेशों को प्रवृत्त नहीं करा सकता और यह केवल इस कारण है कि धारा 9 न्यायालय को माध्यस्थम् कार्यवाहियों के दौरान अंतरिम आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान करती है । तत्पश्चात् **एम. डी. आर्मी वेलफेयर हाउसिंग संगठन** बनाम **सुमंगल सर्विसेज प्रा. लि.,**(2004) 9 एस. सी. सी. 619 वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की धारा 17 के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण को

अपने आदेश प्रवृत्त कराने की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है और न ही वह इसके न्यायिक प्रवर्तन का उपबंध करती है ।

48. ऐसे स्प-ट न्यायिक राय की दशा में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने **श्री कृ-ण** बनाम **आनन्द,** (2009) 3 अरब एल. आर. 447 (दिल्ली) (जिसका अनुसरण **इंडिया बुल फाइनेन्शियल सर्विसेज** बनाम **जुबिली प्लाट,** ओ. एम. पी. सं. 452-453/2009 आदेश तारीख 18.08.2009 में किया गया) वाले मामले में धारा 17 के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण के आदेशों को प्रवृत्त कराने हेतु उपयुक्त विधायी आधार का पता लगाने का प्रयास किया । दिल्ली उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 17 के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण के आदेश का पालन करने में असफल व्यक्ति अधिनियम की धारा 27(5) के अधीन ''कोई अन्य व्यतिक्रम करने'' या ''कार्यवाहियों के संचालन के दौरान माध्यस्थम् अधिकरण के किसी अपमान का दो-ी'' समझा जाएगा । व्यथित पक्षकार को तब उपचार समुचित दंड देने के लिए न्यायालय को अभ्यावेदन करने हेतु माध्यस्थम् अधिकरण को आवेदन करना होगा । एक बार माध्यस्थम् अधिकरण से न्यायालय को ऐसा अभ्यावेदन प्राप्त होने पर न्यायालय व्यतिक्रम के ऐसे पक्षकार से निपटने में सक्षम होगा मानो यह न्यायालय के आदेश का अवमान है अर्थात् या तो न्यायालय अवमान अधिनियम के उपबंधों के अधीन या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 2क के उपबंधों के अधीन, में है ।

49. आयोग यह विश्वास करता है कि यद्यपि माध्यस्थम् अधिकरण के अंतरिम आदेशों को शक्ति प्रदान करना और उनके प्रवर्तन के लिए उपबंध करना महत्वपूर्ण है फिर भी **श्रीकृ-ण** बनाम **आनन्द** वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय संपूर्ण समाधान नहीं है । अतः, आयोग ने अधिनियम की धारा 17 के संशोधनों की सिफारिश की जो माध्यस्थम् अधिकरण आदेशों को शक्ति प्रदान करेगा और न्यायालय के आदेशों की तरह उसी रीति से यह कानूनी रूप से प्रवर्तनीय होगा । इस बाबत, आयोग के मत यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि के अनुच्छेद 17 के 2006 के संशोधनों के (यद्यपि जहां तक विस्तृत नहीं है) अनुरुप हैं ।

कपट की माध्यमस्थता और तथ्य के जटिल मुद्दे

50. कपट की माध्यमस्थता का मुद्दा कई अवसरों पर उठा और इस वि-नय पर सर्वोच्च न्यायालय के परस्पर विरोधी विनिश्चय विद्यमान हैं । जहां **भारत रसिक लाल** बनाम **गौतम रसिक लाल,** (2012) 2 एस. सी. सी. 144 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब कपट ऐसी प्रकृति का है कि वह माध्यस्थम् करार को दू-ित करता है तो न्यायालय को मुद्दे को अवधारित कर माध्यस्थम् करार के विधिमान्यता को विनिश्चय करना है । इस मुद्दे पर कि क्या कपट का मुद्दा माध्यमस्थेय

है, निर्णयों की दो समान रेखाएं विद्यमान हैं ।

इस संदर्भ में, उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **राधाकृ-णन** बनाम **मैस्ट्रो इंजीनियर्स,** (2010) 1 एस. सी. सी. 72 वाले मामले में अधिनियम की धारा 8 के अधीन आवेदन न्यायनिर्णीत करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि कपट का मुद्दा माध्यमस्थेय नहीं है । यह विनिश्चय प्रकट रूप से **अब्दुल कादिर** बनाम **माधव प्रभाकर,** ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 406 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय पर आधारित था । तथापि, उक्त तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय (जो **रसेल** बनाम **रसेल** [188014 चै.डी. 471] वाले मामले के नि-क-र्ा पर आधारित था) एकमात्र इस प्रतिपादना की नजीर है कि ऐसा पक्षकार जिसके विरुद्ध कपट का अभिकथन सार्वजनिक मंच पर किया गया है, को उस सार्वजनिक मंच पर स्वयं ही प्रतिरक्षा करने का अधिकार है । फिर भी, **राधाकृ-णन** का अनुसरण करते हुए यह प्रतीत होता है कि कपट का मुद्दा माध्यमस्थेय नहीं है ।

51. कतिपय उच्च न्यायालयों द्वारा कपट के गंभीर मुद्दे और कपट के मात्र अभिकथन के बीच अंतर भी किए गए हैं और पहले वाले को माध्यमस्थेय अभिनिर्धारित किया गया है (**आइवरी प्रापर्टीज एंड होटल प्राइवेट लि.** बनाम **नुसली नेबिल्ले वाडिया,** (2011) 2 अरब, एल. आर. 479 (बम्बे) ; **सी. एस. रविशंकर** बनाम **सी. के. रविशंकर,** (2011) 6 का. एल. जे. 417 वाले मामले देखें) । **मेगुइन जी. एम. बी. एच.** बनाम **नन्दन पेट्रोकेम लि.,** (2007) 5 आर. ए. जे. 239 (एस.सी.) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 11 के अधीन फाइल आवेदन के संदर्भ में आगे कार्रवाई की और मध्यस्थ नियुक्त किया यद्यपि कपट का मुद्दा अंतवर्लित था । हाल ही में, **स्विस टाइमिंग लि.** बनाम **आर्गनाइजिंग कमेटी,** अरब अर्जी सं. 34/3013 तारीख 28.05.2014 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में धारा 11 के अधीन समरूप मामले में अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अभिनिर्धारित कियाकि राधाकृ-णन वाला निर्णय अनवधानतावश किया गया है, अतः अच्छी विधि नहीं है ।

52. आयोग यह विश्वास करता है कि इस संपूर्ण संविवाद को स्थिर करना और कपट के मुद्दे को अभिव्यक्ततः माध्यमस्थेय बनाना महत्वपूर्ण है और इस प्रयोजन के लिए धारा 16 में संशोधन प्रस्तावित है ।

मध्यस्थों की तटस्थता

53. सार्वभौमिकतः यह स्वीकार किया जाता है कि माध्यस्थम् प्रक्रिया सहित कोई न्यायिकेतर प्रक्रिया नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार होनी चाहिए । माध्यस्थम् की प्रक्रिया में, मध्यस्थों की तटस्थता अर्थात् उनकी स्वतंत्रता और नि-पक्षता पूरी प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण है ।

54. अधिनियम में, तटस्थता की कसौटी धारा 12(3) में उपवर्णित है जो उपबंध करती है -

> ''किसी मध्यस्थ पर तभी आक्षेप किया जा सकेगा, यदि (क) ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हों जो उसकी स्वतंत्रता या नि-पक्षता के बारे में उचित शंकाएं उत्पन्न करती हो .....।''

55. अधिनियम ''परिस्थितियों'' की पहचान के लिए कोई अन्य शर्त अधिकथित नहीं करता जो ''उचित शंकाएं'' उत्पन्न करती हो और यह स्प-ट है कि कई ऐसी परिस्थितियां और स्थितियां हो सकती हैं । कसौटी यह नहीं है कि क्या प्रस्तुत परिस्थितियों में कोई वास्तविक पक्षपात है जिसके लिए वर्जन इतना अधिक है ; बल्कि क्या प्रश्नगत परिस्थितियां पक्षपात की कोई उचित आशंका उत्पन्न करती है ।

56. इस उपबंध की सीमाओं का परीक्षण भारतीय उच्चतम न्यायालय में संभाव्य मध्यस्थ के रूप में (उस सत्ता से सहबद्ध) विशि-ट व्यक्तियों/अभिधानों का नाम उल्लिखित करते हुए राज्य सत्ताओं की संविदाओं के संदर्भ में किया गया । उच्चतम न्यायालय के कई विनिश्चयों में स्थिर किया गया प्रतीत होता है (**कार्यपालक अभियंता** बनाम **सिंचाई खंड, पुरी** बनाम **गंगाराम छपोलिया,** 1984(3) एस. सी. सी. 627 ; **सचिव, परिवहन विभाग, मद्रास** बनाम **मनुसामी मुदालिवार,** 1988 (सप्ली.) एस. सी. सी. 651 ; **इन्टरनेशनल अथारिर्टी आफ इंडिया** बनाम **के. डी. वाली और एक अन्य,** (1988) 2 एस. सी. सी. 360 ; **एस. राजन** बनाम **केरल राज्य,** (1992) 3 एस. सी. सी. 608 ; **मैसर्स इंडियन ड्रग एंड फार्मास्युटिकल** बनाम **मेसर्स इंडो स्विस स्पेथेटिक जर्म मैन्यूफैक्वरिंग कं. लि.,** (1996) 1 एस. सी. सी. 54 ; **भारत संघ** बनाम **भारत पेट्रोलियम निगम लि.,** (2007) 5 एस. सी. 304 वाले मामले देखें) कि सरकारी संविदाओं में माध्यस्थम् करार जिसमें विभाग के सेवारत कर्मचारी द्वारा माध्यस्थम् का उपबंध है, विधिमान्य और प्रवर्तनीय है । **इंडियन आयल निगम लि.** बनाम **राजा परिवहन (प्रा.) लि.,** (2009) 8 एस. सी. सी. 520 वाले मामले में, यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने ऐसी स्थितियों में छुटपुट अपवाद चिह्नित किए जब मध्यस्थ संविदा वि-नय की बाबत नियंत्रक या व्यवस्थापक प्राधिकारी था या यदि वह उस अधिकारी जिसका विनिश्चय विवाद की वि-नय-वस्तु है, (किसी अन्य विभाग में अवर पंक्ति के अधिकारी की तुलना में) सीधे अधीनस्थ है'', और इस अपवाद का प्रयोग उच्चतम न्यायालय द्वारा **डेनेल प्रापर्टीज लि.** बनाम **भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय,** ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 817 और **बिप्रोमैस्ज विप्रन ट्रेडिंग सा.** बनाम **भारत इलेक्ट्रानिक्स लि.,** (2012)6 एस. सी. सी. 384 वाले मामलों में धारा 11 के अधीन स्वतंत्र मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए किया गया, यह पर्याप्त नहीं है ।

57. यह प्रतीत होता है कि प्रक्रियागत ऋजुता और इन संविदाओं की बाध्यकर प्रकृति के बीच संतुलन का झुकाव उच्चतम न्यायालय द्वारा बाद वाले के पक्ष में किया गया और आयोग यह विश्वास करता है कि विधि की वर्तमान स्थिति संतु-टि से काफी दूर है । चूंकि नि-पक्षता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम विशे-ाकर माध्यस्थम् अधिकरण के गठन के प्रक्रम पर, अस्वीकार नहीं किया जा सकता इसलिए यह कहना बेतुकापन होगा कि पक्षकार स्वायत्तता का प्रयोग इन सिद्धांतों की पूर्ण अवहेलना कर किया जा सकता है - चाहे पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न होने के पूर्व इस पर सहमति हुई हो । कतिपय न्यूनतम स्तर की स्वतंत्रता और नि-पक्षता की अपेक्षा पक्षकारों के प्रकट करार के बावजूद माध्यस्थम् प्रक्रिया के लिए होनी चाहिए । उदाहरणार्थ, एक संवेदनशील विधि ऐसे मध्यस्थ की नियुक्ति की अनुज्ञा नहीं दे सकती है जो स्वयं विवाद का पक्षकार है या जो एक पक्षकार द्वारा नियोजित है (या इसी प्रकार निर्भर है, चाहे इस पर पक्षकार क्यों न सहमत हों । आयोग निश्चय ही यह जोड़ना चाहता है कि श्री पी. के. मल्होत्रा पदेन सदस्य, विधि आयोग ने राज्य के लिए अपवाद बनाने और राज्य पक्षकारों को कर्मचारी मध्यस्थ नियुक्त करने की अनुज्ञा देने का सुझाव दिया । आयोग की यह राय है कि इस मुद्दे पर राज्य और गैर-राज्य पक्षकारों के बीच कोई अंतर नहीं हो सकता है । पक्षकार स्वायत्तता की अवधारणा का विस्तार ऐसे बिंदु तक नहीं किया जा सकता जहां यह विवादों के समाधान के लिए नि-पक्ष और स्वतंत्र न्यायनिर्णायकों के रखने की आधार को ही नकारता है । वस्तुतः, जब न्यायनिर्णायक नियुक्तिकर्ता पक्षकार राज्य है तो नि-पक्ष और स्वतंत्र न्याय निर्णायक नियुक्त करने का कर्तव्य और अधिक कठिन है - और नैसर्गिक न्याय के अधिकार को संविदा के समय और विवाद् उद्भूत होने के पूर्व पक्षकारों के बीच ''पूर्व'' करार के आधार पर ही अधित्यजित हो गया, नहीं कहा जा सकता ।

58. मध्यस्थों की तटस्थता के इस आधारभूत मुद्दे से निपटने के लिए बड़े पैमाने पर संशोधन सुझाए गए हैं, जिसे आयोग भारत की माध्यस्थम् प्रक्रिया के कार्यकरण हेतु कठिन मानता है । विशे-ाकर, अधिनियम की धारा 11, 12 और 14 में संशोधन प्रस्तावित किए गए हैं ।

59. आयोग ने मध्यस्थ की संभाव्य नियुक्ति के प्रक्रम पर किसी संबंध या ऐसे किसी प्रकार के हित जिससे उचित शंकाएं पैदा होने की संभावना हो, के अस्तित्व के बारे में उसके द्वारा विनिर्दि-ट प्रकटनों की अपेक्षा का प्रस्ताव किया है जो अंतरररा-ट्रीय माध्यस्थम् में हितों के विरोध पर आई.बी.ए. मार्गदर्शक सिद्धांतों की लाल और गुलाबी सूची से आहरित किया गया है, और जो यह अवधारित करने के लिए ''मार्ग-दर्शक'' के रूप में माना जाएगा कि क्या ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिससे ऐसी उचित शंकाएं

उत्पन्न होती हैं । दूसरी ओर, अधिनियम की प्रस्तावित धारा 12(5) और पांचवी अनुसूची जो आई.बी.ए. मार्ग दर्शक सिद्धांतों की लाल सूची से (उपरोक्त) सम्मिलित करती है, के निबंधनानुसार, मध्यस्थ नियुक्त किए जाने का प्रस्तावित व्यक्ति, प्रतिकूल किसी पूर्व करार के होते हुए भी इस प्रकार नियुक्त किए जाने के अपात्र होगा । ऐसे अपात्र व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने की तात्पर्यता की दशा में, वह धारा 14 के प्रस्तावित स्प-टीकरण के निबंधनानुसार अपना कृत्य करने के अयोग्य विधितः समझा जाएगा । अतः, यद्यपि (चौथी अनुसूची में यथा उपवर्णित और जो आई. बी. ए. मार्ग दर्शक सिद्धांतों की लाल और गुलाबी सूची पर आधारित) प्रवर्गों की वृहत् सूची की बावत प्रकटन अपेक्षत है फिर भी, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने की अपात्रता (और परिणामतः ऐसा कार्य करने की असमर्थता विधितः) (आई.बी.ए. मार्गदर्शक सिद्धांतों की लाल सूची पर आधारित पांचवी अनुसूची में यथा उपवर्णित) लघु और स्थितियों के अधिक गंभीर उप-समूह से निःसृत होता है ।

60. तथापि, आयोग यह महसूस करता है कि वास्तविक और असली पक्षकार स्वायत्तता का सम्मान किया जाए और कतिपय परिस्थितियों में पक्षकारों को प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची में यथा उपवर्णित अपात्रता के प्रवर्गों को भी अधित्यजित करने की अनुज्ञा दी जाए । यह ऐसे कुटुम्ब माध्यस्थम्ों और अन्य माध्यस्थम्ों की स्थितियों में हो सकता है जहां कोई व्यक्ति उसकी स्वतंत्रता और नि-पक्षता की बावत ''उचित शंकाओं'' के उद्देश्य की विद्यमानता के बावजूद विवाद के पक्षकारों पर अंध विश्वास और आस्था रखता है । ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए, आयोग ने धारा 12(5) में परंतुक का प्रस्ताव किया है, जहां पक्षकार, उनके बीच विवाद उत्पन्न होने के पश्चात् लिखित रूप में अभिव्यक्त करार द्वारा प्रस्तावित धारा 12(5) की उपयोज्यता को अधित्यजित कर सकते हैं । सभी अन्य मामलों में, प्रस्तावित धारा 12(5) के सामान्य नियम का पालन किया जाए । यदि मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में उच्च न्यायालय में आवेदन किया जाता है तो आयोग ने धारा 12(1) के निबंधनानुसार प्रकटन की ईप्सा करने का प्रस्ताव किया है और इस संदर्भ में उच्च न्यायालय या अभिहित को मध्यस्थ नियुक्त करते समय ऐसे प्रकटन की अंतर्वस्तुओं पर ''सम्यक् ध्यान'' देना होगा ।

''पक्षकार'' की परिभा-ा

61. माध्यस्थम् पक्षकारों के बीच ''संविदा'' या ''करार'' के आधार पर शक्तियां और प्राधिकार व्युत्पन्न माध्यस्थम् अधिकरण के साथ विवाद समाधान का सहमतिजन्य रूप है । इस करार का दूरगामी परिणाम है - यह माध्यस्थम् करार के निबंधनानुसार विवाद के समाधान के लिए न्यायालय में अपने उपचार का फायदा उठाने हेतु माध्यस्थम् करार के पक्षकार का अधिकार छीनता है ; अधिनियम की धारा 34 के निबंधनों में

अवलंब लेने के सीमित अधिकार के साथ परिणामी पंचाट को बाध्यकर बनाता है । इस प्रकार, यह विवाद समाधान के तरीके के रूप में इस ''सहमतिजन्य'' और ''करार आधारित'' माध्यस्थम् की प्रास्थिति को बेतुका और बेमेल करता है क्योंकि यह ऐसे व्यक्तियों को भी अधीन करता है जो इसके द्वारा आबद्ध होने के लिए माध्यस्थम् करार के ''पक्षकार'' नहीं हैं ।

62. तथापि, पक्षकार का निश्चय ही अर्थ माध्यस्थम् करार का केवल हस्ताक्षरकर्ता ही नहीं है । उचित संदर्भ में, ''पक्षकार'' का अर्थ मात्र हस्ताक्षकर्ता ही नहीं बल्कि ऐसे हस्ताक्षरकर्ता ''के माध्यम से या उसके अधीन दावा करने वाले'' व्यक्ति भी है - उदाहरणार्थ - ऐसे पक्षकार के हित-उत्तराधिकारी, ऐसे पक्षकारों के अभिन्न आदि । विशि-टतः यह ऐसे अनिगमित सत्ताओं के मामले में सही है जहां ''व्यक्तित्व'' का मुद्दा प्रायः एक कठिन विधिक प्रश्न है और कई अन्य मुद्दों को जन्म देता है । इस सिद्धांत की मान्यता न्यूयार्क कन्वेशन, 1985 द्वारा दी गई है जो अनुच्छेद 11(1) में ''परिभाि-त विधिक संबंध की बावत'' चाहे संविदागत है या नहीं, पक्षकारों के बीच करार को मान्यता प्रदान करता है ।

63. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 7 ने यू. एन. सी. ट्राल मोडल विधि के अनुच्छेद 7 के तत्समान उपबंध से ''माध्यस्थम् करार'' की परिभा-ा उधार ली है जिसने पहले इसे न्यूयार्क कन्वेशन के अनुच्छेद 11 से उधार लिया था । तथापि, धारा 12(1)(झ) में ''पक्षकार'' शब्द की परिभा-ा ऐसे ''पक्षकार'' को निर्दि-ट करता है जिसका अर्थ ''माध्यस्थम् करार के पक्षकार'' से है । यह निर्बंधितः माध्यस्थम् करार के मात्र ''हस्ताक्षरकर्ता'' के अभिप्राय के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता, क्योंकि ऐसी कई स्थितियां और संदर्भ है जहां ''गैर-हस्ताक्षरकर्ता'' को भी माध्यस्थम् करार का ''पक्षकार'' कहा जा सकता है । **क्लोरो कन्ट्रोल** बनाम **सेवर्न ट्रेन्ट वाटर प्यूरीफिकेशन,** (2012) 1 एस. सी. सी. 614 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इसको मान्यता प्रदान किया जहां माननीय उच्चतम न्यायालय को अधिनियम की धारा 45 की व्याप्ति और निर्वचन पर विचार करना था और इस संदर्भ में, सुसंगत सिद्धांतों की व्याप्ति का चर्चा की जिसके आधार पर ''गैर-हस्ताक्षरकर्ता'' को अंतर संबंधी संविदा, कंपनी समूह सिद्धांत आदि के मामलों सहित माध्यस्थम् करार द्वारा आबद्धकर कहा जा सकता है ।

64. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया निर्वचन अधिनियम की धारा 45 के शब्दों के अनुसार है जो माध्यस्थम् के पक्षकारों को निर्दि-ट करने के लिए न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष आवेदन के लिए ''किसी पक्षकार के माध्यम से या उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति'' के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है । यही भा-ा

अधिनियम की धारा 54 में भी पाई जाती है । तथापि, अधिनियम की धारा 8 के तत्समान उपबंध में इस भा-ा का अभाव है जहां संदर्भ की यह मांग है कि किसी पक्षकार में ''ऐसे पक्षकार के माध्यम से या उसके अधीन दावा करने वाला व्यक्ति'' भी सम्मिलित है । इस असंगति को दूर करने के लिए, आयोग अधिनियम की धारा 2(झ) के अधीन ''पक्षकार'' की परिभा-ा का संशोधन करने का प्रस्ताव करता है ।

अधिनिर्णीत रकम पर ब्याज

65. यह मुद्दा कि क्या भावी ब्याज मूल रकम पर ही नहीं बल्कि पंचाट की तारीख तक प्रोद्भूत ब्याज पर भी संदेय है, धारा 31(7) के स्प-ट शब्दों के होते हुए भी संविवादित बना हुआ । आरंभतः, 1940 अधिनियम के अधीन स्थिति यह थी कि चक्रवृद्धि ब्याज अधिनिर्णीत करने पर अभिव्यक्ततः रोक था । यह ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3(3)(ग), माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 29 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 के पढ़ने से स्प-ट है ।

66. तथापि, **रेनूसागर पावर कं. लि.** बनाम **जनरल इलेक्ट्रिक,** 1994 स्पली. (1) एस. सी. सी. 644 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चक्रवृद्धि ब्याज अधिनिर्णीत करना भारत की लोकनीति का अतिक्रमण नहीं है । यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि ये मताभिव्यक्तियां ऐसे मामले के संदर्भ में की गई थी जहां माध्यस्थम् अधिकरण ने अभिव्यक्ततः इंगित किया था कि उन्हें चक्रवृद्धि ब्याज अदा करने की संविदा पर विचार नहीं करना था किंतु वे क्षतिग्रस्त पक्षकार को उसी आर्थिक स्थिति में रखने के लिए संविदा भंग के उपचार के रूप में चक्रवृद्धि ब्याज अधिनिर्णीत कर रहे हैं क्योंकि उसकी स्थिति वैसी होती यदि संविदा का सम्यक् रूप से पालन किया गया होता । इस पंचाट को भारत की लोकनीति के अनुरूप अभिनिर्धारित किया गया । इसके अतिरिक्त, उपरोक्त उल्लेखानुसार, यह स्प-टतः कहा गया था कि चक्रवृद्धि ब्याज तभी अधिनिर्णीत किया जा सकता है जब यह कानून के अधीन ऐसा करना अनुज्ञेय है ।

67. 1996 अधिनियम के अधीन, जो शब्द प्रयुक्त है उनका काफी व्यापक अभिप्राय है और सुसंगत उपबंधों की स्कीम यह उपदर्शित करती है कि ब्याज पर ब्याज का पंचाट न केवल अनुज्ञेय है बल्कि मानक भी है । फिर भी, **हरियाणा राज्य** बनाम **एल. अरारो एंड कं.** (2010) 3 एस. सी. सी. 690 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया ''धारा 31(7) में चक्रवृद्धि ब्याज या ब्याज पर ब्याज के संदाय का कोई प्रतिनिर्देश नहीं है । न ही यह ऐसे ब्याज की अपेक्षा करता है जो पंचाट-पश्चात् ब्याज की संगणना के लिए पंचाट की तारीख से मूल के भाग के रूप में लिए जाने हेतु पंचाट की तारीख तक प्रोद्भूत होता है ।'' अधिनियम की कानूनी स्कीम के प्रतिकूल होने के अलावा, अरोरा वाले मामले का

विनिश्चय भी **ओ.एन.जी.सी.** बनाम **एम.सी. क्लेलैण्ड इंजीनियर्स एस. ए.,** (1999) 4 एस.सी. सी. 327 और **यू. पी. सहाकारी फेडरेशन लि.** बनाम **श्री सर्किल** (2009) 10 एस. सी. सी. 374 वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ (सहवर्ती) के विनिश्चय के विरुद्ध है ।

68. न्यायिक मत के इस विरोध को मानते हुए, उच्चतम न्यायालय ने **हैदर कंसल्टिंग (यू.के.)** बनाम **उड़ीसा के राज्यपाल,** (2013) 2 एस. सी. सी. 719 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस मुद्दे के अवधारण के लिए तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दि-ट किया ।

69. इस संदर्भ में आयोग ने चक्रवृद्धि ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए माध्यस्थम् अधिकरण की शक्तियों की व्याप्ति को स्प-ट करने और ऐसा दर जिस पर व्यतिक्रम अधिनिर्णीत किया जाए को तर्कसंगत बनाने और 18% के विद्यमान दर से हटकर वाणिज्यिक वास्तविकताओं के अनुरूप बाजार आधारित अवधारण हेतु धारा 31 को संशोधित करने का प्रस्ताव किया है ।

खर्च

70. काफी हद तक पारंपरिक विरोधात्मक विवाद समाधान की तरह, माध्यस्थम् एक खर्चीली प्रतिपादना है । न्यायालय फीस के संदाय के बचने से किसी पक्षकार की बचत प्रायः माध्यस्थम् - जिसमें मध्यस्थ की फीस और व्यय, संस्थागत फीस और व्यय, अधिवक्ता, साक्षी, स्थान, सुनवाई आदि से संबंधित फीस और व्यय सहित के अन्य खर्चों द्वारा व्यर्थ हो जाती है । महत्वपूर्ण खर्च बढ़ने की संभावना से ऐसे खर्चों के संविभाजन और वसूली से संबंधित नियमों की पूर्वानुमानता और स्प-टता की आवश्यकता को उचित ठहराती है । आयोग यह विश्वास करता है कि नियमतः खर्चों को ऐसी रीतिसे आबंटित किया जाना उचित है जो 'माध्यस्थम्' में पक्षकारों के सापेक्ष सफलता और असफलता को प्रतिबिंबित करता है जब तक विशे-न परिस्थितियों से अपवाद की अपेक्षा न हो या अन्यथा पक्षकार (उनके बीच विवाद उत्पन्न होने के पश्चात् ही) सहमत न हो ।

71. हारने वाला-संदाय करता है, नियम का अनुकरण विधितः किसी विशि-ट रीति से विवाद को विनिश्चित करने की पृ-ठभूमि से ही तार्किक रूप से किया जाता है ; और आर्थिक नीति के वि-नय के रूप में निरर्थक संचालन के विरुद्ध आर्थिक रूप से प्रभावी प्रतिकार का उपबंध करता है और संविदागत बाध्यता के अनुपालन को बढ़ाता है ।

72. अतः, आयोग ने अधिनियम की धारा 6क का प्रस्ताव कर माध्यस्थम्ों और न्यायालय से संबंधित मुकदमों दोनों को लागू व्याप्त खर्च व्यवस्था में व्यापक सुधार की

ईप्सा की है जो अभिव्यक्ततः माध्यस्थम् अधिकरणों और न्यायालयों को युक्तिसंगत और वास्तविक मानदंड पर आधारित खर्चों को अधिनिर्णीत करने की शक्ति प्रदान करती है । यह उपबंध **सलेम एडवोकेट बार संगम** बनाम **भारत संघ** ए. आई.आर. 2005 एस. सी. 3353 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की भावना को आगे बढ़ाता है और यह आशा तथा विश्वास किया जाता है कि न्यायाधीश और मध्यस्थ इस जोशीले उपबंध का फायदा उठाएंगे और मुकदमें में पहले ही पक्षकारों को ''खेल का नियम'' स्प-ट करेंगे जिससे कि निरर्थक और सारहीन मुकदमेबाजी/माध्यस्थम् से बचा जा सके ।

अन्य संशोधन

73. आयोग ने अधिनियम के कतिपय अन्य उपबंधों को स्प-ट करने के लिए भी कुछ संशोधन प्रस्तावित किए हैं । धारा 2(ड़)(iii) में ''कंपनी'' के प्रतिनिर्देश को हटाकर, जो पहले से ही धारा 2(ड़)(ii) के अंतर्गत है, ''अंतरर-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्'' की परिभा-ा में संशोधन करने का प्रस्ताव किया है । प्रस्ताव के पीछे आशय यह है कि कंपनी के निवास का अवधारण करने की कसौटी इसके संस्थापन के स्थान पर न कि केंद्रीय प्रबंधन/नियंत्रण के स्थान पर आधारित होना चाहिए । यह विधि को अधिक निश्चित बनाता है और **टी.डी.एम. इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लि.** बनाम **यू.ई. विकास प्रा. लि.,** (2008) 14 एस.सी.सी. 271 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित ''संस्थापन का स्थान'' को पुनःदृढ़ करता है ।

74. धारा 7 में भी दो संशोधन प्रस्तावित किए गए हैं । यह स्प-ट किया जाता है कि माध्यस्थम् करार ''माध्यस्थम् द्वारा समझौते के योग्य वि-ाय-वस्तु'' के संबंध में हो । यह माध्यमस्थेयता के सिद्धांत को कानूनी मान्यता प्रदान करता है । प्रस्तावित धारा 7(3क) और 7(3ख) का आशय भारतीय विधि को यू. एन. सी. ट्राल मोडल विधि के अनुरुप लाना है और यह स्प-ट करता है कि माध्यस्थम् करार का समापन इलैक्ट्रानिक संसूचना द्वारा भी किया जा सकता है ।

75. आयोग ने यह स्प-ट करने के लिए धारा 25(ख) में भी एक संशोधन करने का प्रस्ताव किया है जहां प्रत्यर्थी द्वारा प्रतिरक्षा के अपने कथन को संसूचित करने में व्यतिक्रम पर, माध्यस्थम् अधिकरण को (माध्यस्थम् को जारी रखने के अधिकार के अलावा) ऐसे प्रत्यर्थी के प्रतिरक्षा के कथन को फाइल करने के अधिकार को समपहृत मानने का भी विवेकाधिकार होगा ।

संक्रमणकालीन उपबंध

76. आयोग ने लंबित माध्यस्थम्ों/कार्यवाहियों की बावत प्रत्येक संशोधन के प्रचालन की व्याप्ति को स्प-ट करते हुए अधिनियम की नई धारा 85क को अंतःस्थापित करने का प्रस्ताव

किया है । सामान्य नियम के अनुसार संशोधन धारा 85क में उपवर्णित कतिपय दशाओं या अन्यथा स्वयं संशोधन में उपवर्णित के सिवाए भवि-यलक्षी रूप से लागू होंगे ।

अध्याय III

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रस्तावित संशोधन

उद्देशिका का संशोधन

पूर्वोक्त "विधि बनाई जाए" शब्दों के पश्चात् निम्नलिखित अंतःस्थापित किया जाए:

और विवाद समाधान के नि-पक्ष, शीघ्र और खर्च प्रभावी साधनों का उपबंध करने के लिए देशी माध्यस्थम्, अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों और विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों के प्रवर्तन से संबंधित विधि का सुधार करना और सुलह से संबंधित विधि को परिभाि-त करना भी अपेक्षित है ;

[**टिप्पण** : यह संशोधन माध्यस्थम् के माध्यम से विवादों के नि-पक्ष, शीघ्र और किफायती समाधान के उद्देश्य को प्राप्त करने के अधिनियम के फोकस को और प्रदर्शित तथा अभिपु-ट करने के लिए प्रस्तावित है ।]

धारा 2 का संशोधन

1. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मुख्य अधिनियम' कहा गया है) की धारा 2 में, -

(I) उपधारा (1) के खंड (घ) में, "..... मध्यस्थों का कोई पैनल ...." शब्दों के पश्चात् "और आपात मध्यस्थ की नियुक्ति का उपबंध करने के लिए संस्था के नियमों के अधीन संचालित माध्यस्थम् की दशा में ऐसा आपात मध्यस्थ सम्मिलित है ;" जोड़ा जाएगा ;

[**टिप्पण** : यह संशोधन यह सुनिश्चित करने के लिए है कि ए.आई.ए.सी. माध्यस्थम् नियम जैसे संस्थागत नियम जो आपात मध्यस्थ का उपबंध करते हैं, को भारत में कानूनी मान्यता प्रदान की जाए ।]

(II) उपधारा (1) खंड (ङ) में, "न्यायालय से..." शब्दों के पश्चात् और "आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय" शब्दों के पूर्व "अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न माध्यस्थम् की दशा में" शब्द उपधारा (1) के आरंभ में जोड़ा जाए ।

उपधारा (1) के खंड (ङ) को निम्नलिखित उपखंड (ii) द्वारा प्रतिस्थापित करें :

"(ii) अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् की दशा में, जिले की आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय पर अधिकारिता रखने वाला उच्च न्यायालय और माध्यस्थम् का वि-नय-वस्तु होने वाले प्रश्न का विनिश्चय करने की अधिकारिता रखने वाला अपनी मामूली आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है यदि वे वाद की वि-नय-वस्तु होते, किंतु ऐसे उच्च न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता, या भारत के बाहर माध्यस्थम्ों की बावत अंतरिम उपाय मंजूर करने वाले मामलों में, भारत की विधियों के अनुसार ऐसे उपायों को मंजूर करने की अधिकारिता रखने वाले न्यायालय पर अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय और जिसके अंतर्गत अपनी मामूली आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय आता है ।

[**टिप्पण** : यह ऐसी अधिकारिता के विरोध की समस्या को दूर करने के लिए है जो ऐसे मामलों में उद्भूत होगी जहां अंतरिम उपाय की ईप्सा भारत के बाहर स्थित माध्यस्थम्ों के मामले में भारत में की जाती है । यह भी सुनिश्चित करता है कि अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों में अधिकारिता का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है चाहे ऐसा उच्च न्यायालय मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर पाता ।]

(III) उपधारा (1) के खंड (च) के उपखंड (iii) में, 'संगम या व्यक्ति निकाय' शब्दों के पूर्व 'कंपनी या' शब्द का लोप करें ।

[**टिप्पण** : उपधारा (iii) के 'कंपनी' के प्रतिनिर्देश को हटाया गया है क्योंकि यह पहले ही उपधारा (ii) के अधीन आ गया है । इसका आशय संस्थापन के अपने स्थान पर आधारित कंपनी के निवास न कि केंद्रीय प्रबंधन/नियंत्रण के स्थान को अवधारित करना है । यह आगे **टी.डी.एम. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लि.** बनाम **यू. ई. विकास भारत प्राइवेट लि.,** (2008)14 एस. सी. सी. 271 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित 'संस्थापन का स्थान' के सिद्धांत को पुनःप्रवृत्त करता है और संस्थापन के और केंद्रीय प्रबंधन और नियंत्रण के प्रयोग के स्थान भिन्न-भिन्न स्थान रखने वाले कंपनियों के मामले में अधिक निश्चितता लाता है।]

(IV) उपधारा (1) के खंड (ज) में, "माध्यस्थम् करार का कोई पक्षकार" शब्दों के पश्चात् "या ऐसे पक्षकार के माध्यम से या उसके अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति" शब्द जोड़ा जाए ।

[**टिप्पण** : यह केवल यह स्प-ट करता है कि ''पक्षकार'' के अंतर्गत ऐसा भी व्यक्ति है जो ऐसे पक्षकार से अपना हित व्युत्पन्न करता है और आगे **क्लोरो कन्ट्रोल (I) पी. लि.** बनाम **सेवर्न ट्रेन्ट वाटर प्यूरीफिकेशन इंड और अन्य,** (2013) 1 एस. सी. सी. 641, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को पुनःप्रवृत्त करता है ।]

(V) उपधारा (1) के खंड (ज) के पश्चात्, ''(जज)'' ''माध्यस्थम् का स्थान'' से ''माध्यस्थम् का न्यायिक स्थान अभिप्रेत है ।'' खंड अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : ''माध्यस्थम् का स्थान'' की इस परिभा-ा को इसलिए सम्मिलित किया गया है जिससे यह स्प-ट किया जा सके कि ''माध्यस्थम् का स्थान'' माध्यस्थम् की जगह से भिन्न है । धारा 20 को भी उचित रूप से उपांतरित किया गया है ।]

(IV) उपधारा (2) ''लागू होगा'' शब्द के पहले ''केवल'' शब्द जोड़े ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन सुनिश्चित करता है कि भारतीय न्यायालय केवल ऐसे भाग-1 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत में है । इस विस्तार तक, यह **भाटिया इंटरनेशनल** बनाम **बल्क ट्रेडिंग एस. ए. और एक अन्य** (2002) 4 एस. सी. सी. 105 वाले मामले को उलटता है और **भारत एल्यूमिनियम कंपनी और अन्य** बनाम **कैसर एल्यूमिनियम टेक्निकल सर्विल इंड और अन्य आदि,** (2012) 9 एस.सी.सी. 552, वाले मामले के सिद्धांत ''स्थान केन्द्रता'' को पुनःप्रवृत्त करता है ।]

निम्नलिखित परंतुक को भी अंतःस्थापित करें, ''परंतु प्रतिकूल व्यक्त करार के अधीन रहते हुए, धारा 9, 27, 37(1)(क) और 37(3) के उपबंध अंतरररा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् को भी लागू होंगे चाहे माध्यस्थम् का स्थान भारत के बाहर है, यदि, ऐसे स्थान में किया गया या जो किया जा सकेगा पंचाट इस अधिनियम के भाग-3 के अधीन प्रवर्तनीय और मान्यता प्राप्त है ।''

[**टिप्पण** : यह परंतुक सुनिश्चित करता है कि भारतीय न्यायालय इन उपबंधों की बावत भी अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं चाहे माध्यस्थम् का स्थान भारत से बाहर हो]

(VII) उपधारा (2) के परंतुक के पश्चात उपधारा ''(2क) प्रतिकूल किसी निर्णय/डिक्री के होते हुए भी, इस उपधारा (2) के संशोधन उन आवेदनों को लागू होंगे जो ऐसे संशोधन की तारीख को किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष लंबित है

और ऐसे माध्यस्थम्ों की बावत उद्भूत हुए हैं जहां माध्यस्थम् करार की तारीख 06.09.2012 के पूर्व की है ।" अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : इस परंतु की आवश्यकता है क्योंकि धारा 2(2) का प्रस्तावित संशोधन **भारत एल्यूमिनियम कंपनी और अन्य आदि** बनाम **कैसर एल्यूमिनियम टेक्निकल सर्विस इंक और अन्य, आदि** (2012) 9 एस. सी. सी. 552 वाले मामले में **भाटिया इन्टरनेशनल** बनाम **बल्क ट्रेडिंग एस. ए. और एक अन्य** (2002) 4 एस. सी. सी. 105 वाले मामले के भावी प्रत्यादेश को दूर कर दिया । तथापि, ऐसे आवेदन जो पहले से ही भारतीय न्यायालयों में लंबित है और जिन्हें भाटिया नियम के आधार पर फाइल किया गया है, को संरक्षित किया जाना चाहिए ।]

धारा 6क का अंतःस्थापन

3. अधिनियम की धारा 6 के पश्चात् "धारा" 6क **खर्च की व्यवस्था** -

(1) ऐसी किसी माध्यस्थम् कार्यवाही या ऐसे माध्यस्थम् से संबंधित इस अधिनियम के किन्हीं उपबंधों के अधीन किसी माध्यस्थम् कार्यवाही के संबंध में, न्यायालय/माध्यस्थम् अधिकरण को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में अंतर्वि-ट किसी बात के होते हुए भी, अवधारणकरने का विवेकाधिकार है :

(क) चाहे खर्च एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को संदेय है ;

(ख) उस खर्च की रकम ; और

(ग) कब उन्हें संदत्त किया जाना है ।

स्प-टीकरण - खंड (क) के प्रयोजन के लिए, 'खर्च' से निम्नलिखित के संबंध में युक्तियुक्त खर्च अभिप्रेत है -

(i) मध्यस्थ/न्यायालय और साक्षियों की फीस और व्यय ;

(ii) विधिक फीस और व्यय ;

(iii) माध्यस्थम् का पर्यवेक्षण कर रही संस्था की कोई प्रशासनिक फीस; और

(iv) माध्यस्थम्/न्यायालय कार्यवाही और माध्यस्थम् पंचाट के संबंध में उपगत कोई अन्य व्यय ।

(2) यदि न्यायालय/माध्यस्थम् अधिकरण खर्च के संदाय में आदेश करने का विनिश्चय करता है, तो -

(क) सामान्य नियम यह है कि असफल पक्षकार को आदेश दिया जाएगा कि वह सफल पक्षकार को खर्च का संदाय करे ; किंतु

(ख) न्यायालय/माध्यस्थम् अधिकरण लिखित में कारण लेखबद्ध करते हुए भिन्न आदेश कर सकेगा ।

(3) यह विनिश्चित करते समय कि खर्च के बारे में कैसा आदेश, यदि कोई, करना है तो न्यायालय/माध्यस्थम् अधिकरण को निम्नलिखित सहित सभी परिस्थितियों पर ध्यान देना होगा -

(क) सभी पक्षकारों का आचरण ;

(ख) क्या कोई पक्षकार अपने मामले के एक भाग पर सफल हुआ है, चाहे वह पक्षकार पूर्णतः सफल नहीं हुआ है ;

(ग) क्या पक्षकार ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों के निपटान में विलंब कारित करने के लिए निरर्थक प्रतिदावा किया था ; और

(घ) क्या किसी पक्षकार द्वारा समझौते के लिए कोई युक्तियुक्त प्रस्ताव किया गया था और अन्य पक्षकार द्वारा अयुक्तियुक्ततः इनकार कर दिया गया ।

(4) ऐसे आदेश जो न्यायालय/माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा इस उपबंध के अधीन किए जा सकेंगे, में ऐसा आदेश सम्मिलित होगा कि पक्षकार निम्नलिखित से संबंधित संदाय करे :

(क) दूसरे पक्षकार के खर्च का अनुपात ;

(ख) दूसरे पक्षकार के खर्च की बावत कथित रकम ;

(ग) केवल कतिपय तारीख से या तक खर्च ;

(घ) कार्यवाहियां आरंभ होने के पहले उपगत खर्च ;

(ङ) कार्यवाहियों में उठाए गए विशे-ा कदम संबंधी खर्च ;

(च) कार्यवाहियों के केवल सुभिन्न भाग संबंधी खर्च ; और

(छ) कतिपय तारीख से या तक खर्च पर व्यय ।

(5) ऐसा पूरे खर्च जिसका यह आशय है कि किसी पक्षकार को किसी दशा में माध्यस्थम् की पूरे खर्च या उसके भाग का संदाय करना है, तभी विधिमान्य है यदि प्रश्नगत विवाद के उद्भूत होने के पश्चात् किया जाता है ।

[**टिप्पण** : पूर्वोक्त सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि ''असफल पक्षकार

सफल पक्षकार को खर्च दे'' व्यवस्था सभी माध्यस्थम्/माध्यस्थम् संबंधी न्यायालय के मुकदमों को लागू होती है । ऐसी व्यवस्था निरर्थक कार्यवाहियों और असाम्यापूर्ण आचरण को हतोत्साहित करेगी । उपरोक्त उपबंधों का आधार इंग्लैंड के सिविल प्रक्रिया नियम का नियम 44 है ।

उपधारा (1) का स्प-टीकरण माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसका वर्तमान प्रारुप में अब लोप किया गया है) की धारा 31(8) के स्प-टीकरण के शब्दों को प्रतिबिंबित करता है ।

''असफल पक्षकार सफल पक्षकार को खर्च दे'' व्यवस्था को सम्मिलित करने का मुख्य उद्देश्य निरर्थक दावों/आवेदनों के फाइल किए जाने को हतोत्साहित करना है । ये उपबंध **सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन** बनाम **भारत संघ,** ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3353 वाले मामले के उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय की भावना को भी बढ़ाते हैं ।]

धारा 7 का संशोधन

4. अधिनियम की धारा 7 में,

(i) उपधारा (1) में 'संविदात्मक हों या न हों' शब्दों के पहले ''माध्यस्थम् द्वारा समझौते के योग्य वि-नय-वस्तु से संबंधित'' शब्द जोड़े जाएं ।''

[**टिप्पण** : यह संशोधन पर्याप्ततः यह स्प-ट करता है कि विवाद प्रथमतः माध्यस्थम्योग्य होना चाहिए ।]

(ii) उपधारा (3) के पश्चात् और उपधारा (4) के पहले, उपधाराएं अंतःस्थापित करें -

''(3क) माध्यस्थम् करार लिखित रुप में है यदि इसके अंतर्वस्तु किसी रुप में अभिलिखित है, चाहे माध्यस्थम् करार या संविदा का अंतिम रुप मौखिक, आचरण द्वारा, या किसी अन्य साधन द्वारा दिया गया है ।

(3ख) यह अपेक्षा कि माध्यस्थम् करार लिखित रुप में हो, की पूर्ति इलेक्ट्रानिक संसूचना द्वारा की जाए यदि इसमें अंतर्वि-ट सूचना सुलभ हो जिससे कि पश्चातवर्ती निर्देश के लिए उपयोज्य हो सके ।

स्प-टीकरण - इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए ''इलैक्ट्रानिक संसूचना'' से ऐसी संसूचना अभिप्रेत है जो पक्षकार आंकड़ा संदेश के माध्यम से करते हैं ; ''आंकड़ा संदेश'' से इलैक्ट्रानिक, मैगनेटिक, प्रकाशिक या समरुप साधनों द्वारा

सृजित, भेजी गई, प्राप्त या भंडारित सूचना अभिप्रेत है जिसके अंतर्गत इलैक्ट्रानिक डाटा इन्टरचेंज (ईडीआई) इलैक्ट्रानिक डाक, टेलीग्राफ, टेलेक्स और टेलेकापी है किंतु यहीं तक सीमित नहीं है ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन भारतीय विधि को अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् पर यूएनसी ट्राल मोडल विधि के अनुरुप लाता है और यह स्प-ट करता है कि माध्यस्थम् करार को इलैक्ट्रानिक संसूचना के माध्यम से भी अंतिम रूप दिया जा सकता है ।]

धारा 8 का संशोधन

अधिनियम की धारा 8 में,

(i) उपधारा (1) में, ''विवाद के सार.....निर्दि-ट कर सकता है'' शब्दों के स्थान पर ''विवाद के सार पर.... तो वह ऐसे पक्षकारों को जो माध्यस्थम् करार के पक्षकार है, माध्यस्थम् के लिए निर्दि-ट कर सकता है ।'' शब्द प्रतिस्थापित करें ।

(ii) उपधारा (1) के पश्चात् ''परंतु कोई ऐसा निर्देश केवल ऐसे मामलों में नहीं किया जाएगा जहां -

(i) कार्रवाई के पक्षकार जो माध्यस्थम् करार के पक्षकार नहीं है, कार्रवाई के आवश्यक पक्षकार हैं ;

(ii) न्यायिक अधिकारी यह पाता है कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है या अकृत और शून्य है ; शब्द जोड़े ।

स्प-टीकरण 1 : यदि न्यायिक प्राधिकारी का प्रथमदृ-ट्या माध्यस्थम् करार के अस्तित्व के बारे में समाधान हो जाता है तो वह माध्यस्थम् के पक्षकारों को निर्दि-ट करेगा और धारा 16 के अनुसार माध्यस्थम् करार के अस्तित्व का अंतिम अवधारण माध्यस्थम् अधिकरण पर छोड़ देगा जो इसका प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चय करेगा ;

स्प-टीकरण 2 : किसी अंतरिम आवेदन के संबंध में फाइल ऐसा अभिवचन जो न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष फाइल किया गया है, इस धारा के प्रयोजन के लिए विवाद के सार का कथन नहीं माना जाएगा ।''

[**टिप्पण** : ''माध्यस्थम् कारार के..... ऐसे पक्षकार'' शब्द और परंतुक (1) का संशोधन **सुकन्या होल्डिंग प्रा. लि.** बनाम **जयेश एच. पांड्या और एक अन्य,** (2003) 5 एस.सी. सी. 531 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के

संदर्भ में प्रस्तावित किया गया है - ऐसे मामलों में जहां विवाद के सभी पक्षकार माध्यस्थम् करार के पक्षकार नहीं है, निर्देश केवल वहीं नामंजूर किया जाए, जहां ऐसे पक्षकार कार्रवाई के आवश्यक पक्षकार नहीं हैं - और न केवल वे उचित पक्षकार हैं या कार्रवाई के अन्यथा विधिक अपरिचित हैं बल्कि उन्हें केवल माध्यस्थम् करार को फंसाने के लिए ही जोड़ा गया है ।

संशोधन का परंतुक (ii) माध्यस्थम् के लंबित कार्रवाई का निर्देश चाहने वाले आवेदन पर विचार करते समय न्यायिक प्राधिकारी द्वारा अपनाए जाने वाले दो चरणीय प्रक्रिया अनुध्यात करता है । संशोधन यह परिकल्पित करता है कि न्यायिक प्राधिकारी केवल तभी पक्षकारों को माध्यस्थम् का निर्देश नहीं करेगा यदि वह पाता है कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है या यह अकृत और शून्य है । यदि न्यायिक प्राधिकारी की यह राय है कि प्रथमदृ-ट्या माध्यस्थम् करार विद्यमान है तो वह विवाद माध्यस्थम् को निर्दि-ट करेगा और माध्यस्थम् करार का अस्तित्व माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अंतिम रूप से अवधारण किए जाने के लिए छोड़ देगा । तथापि, यदि न्यायिक प्राधिकारी यह नि-कर्-ा निकालता है कि करार विद्यमान नहीं है तो नि-कर्-ा अंतिम होगा न कि प्रथमदृ-ट्या संशोधन यह परिकल्पित करता है कि इसका निश्चायक अवधारण होगा कि क्या माध्यस्थम् करार अकृत और शून्य है ।'']

(iii) उपधारा (2) में ''उसकी सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति'' शब्दों के पश्चात् ''या अन्य पक्षकार द्वारा मूल माध्यस्थम् करार की मांग करने पर शपथ-पत्र द्वारा संलग्न प्रति या ऐसी परिस्थिति में उसकी सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति जहां मूल माध्यस्थम् करार या सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति केवल अन्य पक्षकार द्वारा प्रतिधारित है ।''

[**टिप्पण** : सरकारी निकाय और लघु बाजार खिलाड़ियों वाले कई संव्यवहारों में, माध्यस्थम् करार की मूल/सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति केवल पहले वाले द्वारा ही प्रतिधारित की जाती है । यह संशोधन यह सुनिश्चित करेगा कि क्या बाद वाला वर्ग इसके आधार पर किसी रीति में प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता ।]

धारा 9 का संशोधन

6. धारा 9 में,

(i) ''कोई'' पक्षकार ''शब्द के पूर्व उपधारा'' ''(1)'' जोड़ें ।

(ii) ''उसके संबंध में उसे हैं'' शब्दों के पश्चात् उपधारा ''(2) जहां,

माध्यस्थम् कार्यवाहियों के पहले, कोई न्यायालय उपधारा (1) के अधीन संरक्षण का कोई अंतरिम उपाय मंजूर करता है वहां माध्यस्थम् कार्यवाहियां ऐसी मंजूरी की तारीख से 60 दिनों के भीतर या न्यायालय द्वारा यथा उपदर्शित ऐसे थोड़े या अग्रिम समय के भीतर आरंभ की जाएंगी जिसके न हो सकने पर, संरक्षण का अंतरिम उपाय प्रवर्तन में नहीं रह जाएगा ; जोड़े ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन ऐसे पक्षकार, जिसे संरक्षण का अंतरिम उपाय मंजूर किया गया है, द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाहियों का समय से आरंभ किया जाना सुनिश्चित करता है]

(iii) उपधारा ''(3) एक बार माध्यस्थम् अधिकरण गठित किए जाने पर, न्यायालय साधारणतः इस उपबंध के अधीन आवेदन ग्रहण नहीं करेगा जब तक ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हों जिसके कारण धारा 17 के अधीन उपचार प्रभावोत्पादक नहीं है ।'' जोड़े ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन एक बार माध्यस्थम् अधिकरण गठित किए जाने के पश्चात् अंतरिम उपाय की मंजूरी के संबंध में न्यायालय की भूमिका को कम करनेकी ईप्सा करता है । कुल मिलाकर एक बार जब मामला अधिकरण के समक्ष विचाराधीन है तो अधिकरण के लिए सभी अंतरिम आवेदनों की सुनवाई करना सर्वाधिक उपयुक्त है । यह 2006 में यथा संशोधित यू.एन.सी. ट्राल मोडल विधि की भावना भी प्रतीत होती है । तदनुसार, धारा 17 का संशोधन माध्यस्थम् अधिकरण को वैसी ही शक्तियां उपलब्ध कराने के लिए किया गया है जैसी धारा 9 के अधीन न्यायालय के पास होगी ।]

धारा 11 का संशोधन

7. धारा 11 में,

(i) उपधारा (4) के उपखंड (ख) में ''मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा'' शब्दों के स्थान ''उच्च न्यायालय द्वारा'' शब्द रखें ।

(ii) उपधारा (5) में ''मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय या उसके द्वारा'' शब्द रखें ।

(iii) उपधारा (6) के उपखंड (ग) में, ''मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्द के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें ।

(iv) उपधारा (6) के पश्चात्, उपधारा ''(6क) उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्ति या उपधारा (4) या उपधारा (5) या उपधारा (6) के अधीन उसके द्वारा पदाभिहित

व्यक्ति या संस्था नहीं बनाई जाएगी यदि उच्च न्यायालय इस नि-कर्ा पर पहुंचता है कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है या अकृत और शून्य है ।

स्प-टीकरण 1 : यदि उच्च न्यायालय का प्रथमदृ-ट्या माध्यस्थम् करार के अस्तित्व के बारे में समाधान हो जाता है तो वह पक्षकारों को माध्यस्थम् को निर्दि-ट करेगा और धारा 16 के अनुसार माध्यस्थम् अधिकरण पर माध्यस्थम् करार की विद्यमानता का अंतिम अवधारण छोड़ देगा जो इसका प्रारंभिक विवाद्यक रूप में विनिश्चय करेगा ।

स्प-टीकरण 2 : किसी संदेह को दूर करने के लिए यह स्प-ट किया जाता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा उसके द्वारा अभिहित किसी व्यक्ति या संस्था को किया गया निर्देश न्यायिक शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं माना जाएगा ।

स्प-टीकरण 3 : उच्च न्यायालय पक्षकारों को वृत्तिक भारतीय या अंतरर-ट्रीय माध्यस्थम् संस्थान द्वारा संस्थागत माध्यस्थम् को विवाद निर्दि-ट करने को प्रोत्साहित करने के कदम उठा सकेगा ।

[**टिप्पण** : प्रस्तावित धारा 11 (6क) अवधारण की उसी प्रक्रिया की परिकल्पना करती है जैसा धारा 8 के प्रस्तावित संशोधन में प्रतिबिम्बित है । स्प-टीकरण 2 यह परिकल्पित करता है कि उच्च न्यायालय द्वारा उसके द्वारा अभिहित किसी व्यक्ति या संस्था को निर्देश न्यायिक शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं माना जाएगा । स्प-टीकरण 3 का अंतःस्थापन इस आशा और प्रत्याशा से किया गया है कि उच्च न्यायालय वृत्तिक भारतीय या अंतरर-ट्रीय माध्यस्थम् संस्था द्वारा विवाद संस्थागत माध्यस्थम् को निर्दि-ट करने हेतु पक्षकारों को प्रोत्साहित करेगा।]

(v) उपधारा (7) में, ''या उपधारा 6'' के पश्चात् ''या उपधारा (6क) जोड़े और ''मुख्य न्यायमूर्ति या'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय अंतिम है जहां माध्यस्थम् अधिकरण की नियुक्ति की गई है'' रखें और ''व्यक्ति या संस्था का विनिश्चय अंतिम होगा'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और लेटर्स पेटेंट अपील सहित कोई अपील ऐसे आदेश के विरुद्ध नहीं की जाएगी ।''

[**टिप्पण** : यह संशोधन सुनिश्चित करता है कि,

(क) माध्यस्थम् करार की विद्यमानता के बारे में सकारात्मक न्यायिक निर्णय ; और (ख) मध्यस्थ नियुक्त करने का प्रशासनिक कार्य अंतिम और गैर-अपीलीय है]

(vi) उपधारा 8 में ''किसी मध्यस्थ की नियुक्ति करने में मुख्य न्यायमूर्ति या

उसके द्वारा पदाभिहित व्यक्ति या संस्था'' शब्दों का लोप कर उसके स्थान पर ''किसी मध्यस्थ की नियुक्ति करने में उच्च न्यायालय या उसके द्वारा पदाभिहित व्यक्ति या संस्था धारा 12 की उपधारा (1) के निबंधनानुसार भावी मध्यस्थ से लिखित रूप में प्रकटन की ईप्सा करेगा और'' शब्द रखें ।

(vii) उपधारा (8) के उपखंड (9) के आरंभ में, ''प्रकटन की अंतर्वस्तु और'' शब्द जोड़े ।

(viii) उपधारा (9) ''भारत का मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्दों के स्थान पर ''भारत का उच्चतम न्यायालय'' शब्द रखें ।

(ix) उपधारा (10) में, ''मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्द के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें ।

(x) उपधारा (11) में, ''उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तियों'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें और ''या उनके'' शब्दों के स्थान पर ''या उसके'' शब्द रखें तथा ''मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्द के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें ।

(xi) उपधारा (12) के उपखंड (क) में, ''मुख्य न्यायमूर्ति के प्रतिनिर्देश'' के स्थान पर ''उच्च न्यायालय, के प्रतिनिर्देश'' शब्द रखें और ''के मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्द का लोप करें और उसके स्थान पर ''उच्चतम न्यायालय'' शब्द रखें ।

(xii) उपधारा (12) के उपखंड (ख) में ''मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें और ''उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' रखें ।

(xiii) उपधारा (12) के पश्चात्, उपधारा ''(13) मध्यस्थ या मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटान, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय या उनके द्वारा पदाभिहित किसी के द्वारा यथासंभव शीघ्र किया जाएगा और विपक्षी पक्षकार को सूचना की तामीली की तारीख से 60 दिनों के भीतर मामले का निपटान किया जाएगा ।'', जोड़ें ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन धारा 11 के अधीन आवेदनों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करता है ।]

(xiv) उपधारा (13) के पश्चात् उपधारा ''(14) अंतरर्रा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों से भिन्न माध्यस्थम्ों की दशा में माध्यस्थम् अधिकरण की फीस और माध्यस्थम् अधिकरण को इसके संदाय की अनुसूची अवधारित करने हेतु उच्च

न्यायालय आवश्यक नियम बनाने के लिए सशक्त है और इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय अधिनियम की छठी अनुसूची का परिशीलन कर सकेगा ।

स्प-टीकरण : शंकाओं को दूर करने के लिए, यह स्प-ट किया जाता है कि धारा 11 की यह उपधारा (14) ऐसे मामले को लागू नहीं होगी जहां पक्षकार माध्यस्थम् संस्था के नियमों के अनुसार फीस का अवधारण करने हेतु सहमत हैं ।"

[**टिप्पण** : ऐसे दृ-टांत हुए हैं जहां मध्यस्थों ने अत्यधिक फीस प्रभारित किए हैं । अतः, निदेर्शी फीस अनुसूची छठी अनुसूची में उपबंधित है । उच्च न्यायालयों को इस बावत अपने निजी नियम विरचित करने की स्वतंत्रता है ।]

धारा 12 का संशोधन

8. धारा 12 में,

(i) उपधारा (1) में "ऐसी परिस्थिति को लिखित रूप में" शब्दों के पश्चात् "प्रकट करेगा जिससे उसकी स्वतंत्रता या नि-पक्षता के बारे में उचित शंकाएं उठाने की संभावना हो ।" शब्दों के स्थान पर उपखंड "(क) पक्षकारों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भूत या वर्तमान संबंध या हित या विवाद की वि-ाय-वस्तु के अस्तित्व के संबंध में, चाहे वित्तीय, कारबार, वृत्तिक या किसी प्रकार की हो, जिससे उसकी स्वतंत्रता या नि-पक्षता के बारे में उचित शंकाएं उठाने की संभावना हो, और" शब्द अंतःस्थापित किए जाएं ।

(ii) उपधारा (1) में, उपखंड (क) के पश्चात्, उपखंड "(ख) जिससे माध्यस्थम् में पर्याप्त समय लगाने की उसकी योग्यता, विशे-ाकर 24 मास के भीतर पूरे माध्यस्थम् को समाप्त करने और ऐसी तारीख से तीन मास के भीतर पंचाट देने की उसकी योग्यता को प्रभावित होने की संभावना है ;" जोड़े ।

(iii) उपधारा (1) में, उपखंड (ख) के पश्चात् "स्प-टीकरण 1 : चौथी अनुसूची की अंतवर्स्तु यह अवधारित करने के लिए कि क्या ऐसी परिस्थितियां विद्यमान है जो मध्यस्थ की स्वतंत्रता या नि-पक्षता के संबंध में उचित शंकाएं पैदा करती है, के संबंध में मार्गदर्शक के रूप में मानी जाएगी ।

स्प-टीकरण 2 : प्रकटन अधिनियम की सातवीं अनुसूची में उपवर्णित रूप में ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाएगा ।" अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : इस संशोधन का आशय माध्यस्थमों में स्वतंत्रता और नि-पक्षता को लक्ष्य को आगे बढ़ाना है और "स्वतंत्रता या नि-पक्षता" पद को विधायी रंग देता है जैसा यह अधिनियम में प्रयुक्त है । चौथी अनुसूची की अंतवस्तु में अंतररा-ट्रीय

माध्यस्थम् में हित के विरोध पर अंतरा-ट्रीय बार एशोसिएशन के मार्गदर्शक सिद्धांतों की लाल और नारंगी सूची सम्मिलित है । श्री मल्होत्रा का मत था कि उक्त उपबंध लोक उपक्रम को नहीं लागू होना चाहिए, क्योंकि लोक उपक्रम को छोड़कर यह उपबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन चुनौतीयोग्य बनाएगा ।]

(iv) उपधारा (4) के पश्चात्, उपधारा ''(5) प्रतिकूल किसी पूर्व करार के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जिसका संबंध पक्षकार, काउंसेल या विवाद की ऐसी वि-नय-वस्तु से है जो पांचवीं अनुसूची में उपवर्णित प्रवर्गों में से किसी एक के अधीन आती है, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने का पात्र नहीं होगा ।'' अंतःस्थापित करे।

(v) उपधारा के पश्चात्, ''परंतु पक्षकार, उनके बीच उद्भूत हुए विवादों के पश्चात् लिखित रूप में व्यक्त करार द्वारा इस उपबंध की उपयोज्यता को त्याग देंगे''। अंतःस्थापित करें ।

(vi) प्रथम परंतुक के पश्चात् दूसरा परंतुक इस प्रकार जोड़े : ''परंतु यह और कि वर्तमान उपधारा ऐसे मामलों को लागू नहीं होगी जहां मध्यस्थ वर्तमान संशोधन की प्रभावी तारीख के पूर्व पहले ही नियुक्त किया गया है ;''

[**टिप्पण** : यह सिद्धांत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप है, कि हितबद्ध व्यक्ति न्यायनिर्णायक नहीं हो सकता है। पांचवीं अनुसूची में हित के विरोध पर आई.बी.ए. मार्गदर्शक सिद्धांतों की अधित्यजनीय और गैर-अधित्यजनीय लाल सूची के उपबंध सम्मिलित है । तथापि, यह खंड सभी संदर्भ (कुटुम्ब प्रतिवेश सहित) के माध्यस्थम्ों को लागू होगा, फिर भी, इस उपबंध को अधित्यजनीय बनाना उपयुक्त है बशर्ते पक्षकार उनके बीच उद्भूत हुए विवादों के पश्चात् ऐसा करने हेतु विनिर्दि-टतः सहमत हो ।]

धारा 14 का संशोधन

9. धारा 14 में ;

(i) उपधारा (1) में ''समाप्त हो जाएगा'' शब्द के पश्चात्, ''जहां'' शब्द हटा दें और ''और उसके स्थान पर अन्य मध्यस्थ रखा जाएगा, जहां'' शब्द जोड़े ;

(ii) उपधारा (1) में, उपखंड (ख) के पश्चात् ''स्प-टीकरण : जहां मध्यस्थ जिसका संबंध पक्षकार, काउंसेल या पांचवीं अनुसूची में उपवर्णित प्रवर्गों में से एक के अधीन विवाद के वि-नय-वस्तु से है, ऐसा मध्यस्थ ''विधितः अपना कृत्य करने में असमर्थ'' समझा जाएगा ।'' जोड़ा जाए ।

[**टिप्पण** : यह धारा 12 के संशोधन के अग्रसरण में है।]

धारा 16 का संशोधन

10. धारा 16 में,

उपधारा (6) के पश्चात्, उपधारा ''(7) माध्यस्थम् अधिकरण को इस बात के होते हुए भी पंचाट करने या विनिर्णय देने की शक्ति होगी कि उसके समक्ष विवाद में विधि का गंभीर प्रश्न, तथ्य के जटिल प्रश्न या कपट, भ्र-टाचार आदि के अभिकथन हैं'' जोड़े ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों (अर्थात् **एन. राधाकृ-णन** बनाम **मेस्ट्रो इन्जीनियर्स,** (2010) 1 एस. सी. सी. 72) के आलोक में प्रस्तावित है जो कपट, आदि के विवाद्यकों को विनिश्चित करने की शक्ति से माध्यस्थम् अधिकरण को वंचित करने वाला प्रतीत होता है ।]

धारा 17 का संशोधन

11. धारा 17 में,

(i) उपधारा (1) में, ''जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, माध्यस्थम् अधिकरण'' शब्दों के स्थान पर ''कोई पक्षकार माध्यस्थम् माध्यस्थम् कार्यवाहियों के दौरान, माध्यस्थम् पंचाट पारित होने के पश्चात् किंतु धारा 36 के अनुसार इसके प्रवृत्त होने के पूर्व, माध्यस्थम् अधिकरण को आवेदन कर सकेगा ।'' और ''संरक्षण का कोई ऐसा अंतरिम उपाय'' शब्दों का लोप करे और ''की वि-नय-वस्तु के संबंध में'' शब्दों के पश्चात् ''निम्नलिखित में से किसी वि-नय की बाबत आदेश दे सकेगा, अर्थात् -''

(ii) उपधारा (1) में, उपखंड ''(क) किसी माल का संरक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या विक्रय जो माध्यस्थम् करार की वि-नय-वस्तु है ;'' अंतःस्थापित करें ।

(iii) उपधारा (1) के उपखंड (क) के पश्चात्, उपखंड ''(ख) माध्यस्थम् में विवाद की रकम अर्जित करने ;'' अंतःस्थापित करें ।

(iv) उपधारा (1) के उपखंड (ख) के पश्चात्, उपखंड (ग) किसी संपत्ति या वस्तु का निरोध, संरक्षण या निरीक्षण जो माध्यस्थम् में विवाद की वि-नय-वस्तु है या जिसके बारे में उसमें कोई प्रश्न उद्भूत हो सकता है और पूर्वोक्त् प्रयोजनों मे से किसी के लिए किसी पक्षकार के कब्जे में किसी भूमि या भवन पर प्रवेश करने के लिए किसी व्यक्ति को प्राधिकृत करने या कोई नमूना लेने के लिए प्राधिकृत करने या कोई मत

व्यक्त करने या परीक्षण हेतु, प्रयास करने जो पूरी जानकारी या साक्ष्य अभिप्राप्त करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन हो सकेगा ।'' अंतःस्थापित करें ।

(v) उपधारा (1) में उपखंड ''(ग)'' के पश्चात् उपखंड ''(घ) अंतरिम व्यादो या प्रापक की नियुक्ति ;'' अंतःस्थापित करें ।

(vi) उपधारा (1) में उपखंड ''(घ)'' के पश्चात् उपखंड ''(ङ) संरक्षण का ऐसा अन्य अंतिरम उपाय जो माध्यस्थम् अधिकरण को उचित और सुविधाजनक प्रतीत हो और माध्यस्थम् अधिकरण को आदेश करने हेतु वही शक्तियां होंगी जैसा न्यायालय के पास उसके समक्ष किसी कार्यवाही के प्रयोजन के लिए और उसके संबंध में होती है'' अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : यह माध्यस्थम् अधिकरण को वही शक्तियां उपलब्ध कराने के लिए है जैसा अंतरिम उपाय मंजूर करने के संबंध में सिविल न्यायालय को हो । जब इस उपबंध का पठन धारा 9(2) को मिलाकर किया जाता है तो पक्षकारों को एकबार अधिकरण गठित होने के पश्चात् अंतरिम अनुतो-न के लिए माध्यस्थम् अधिकरण में आवेदन करने हेतु व्यतिक्रम द्वारा विवश किया जाएगा । माध्यस्थम् अधिकरण को पंचाट-पश्चात् अंतरिम अनुतो-न मंजूर करने की शक्ति बनी रहेगी । यह व्यवस्था न्यायालयों पर भार को कम करेगी । इसके अतिरिक्त, यह व-र्ा 2006 में यथा संशोधित यू.एन. सी. ट्राल मोडल विधि की भावना के भी अनुरुप होगी ।]

(vii) उपधारा (2) के शब्दों का लोप करें और उसके स्थान पर ''(2) धारा 37 के अधीन अपील में पारित किसी आदेश के अधीन रहते हुए, इस धारा के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा जारी कोई आदेश सभी प्रयोजनों के लिए न्यायालय का आदेश समझा जाएगा और उसी रीति में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन प्रवर्तनीय होगा मानो यह न्यायालय का आदेश था'' अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : यह माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा आदेश दिए गए अंतरिम उपायों के प्रभावी प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए है ।]

धारा 20 का संशोधन

12. धारा 20 में, ''माध्यस्थम् का स्थान'' शब्दों के स्थान पर ''माध्यस्थम् की जगह और स्थल'' शब्द रखें ।

(i) उपधारा (1) में ''स्थान'' शब्द के स्थान पर ''जगह और स्थल'' शब्द रखें।

(ii) उपधारा (3) में ''स्थान'' शब्द के स्थान पर ''स्थल'' शब्द रखें ।

[**टिप्पण** : माध्यस्थम् के ''स्थान'' के विद्यमान पद से विपथन का प्रस्ताव अधिनियम की शब्दावली को माध्यस्थम् के ''स्थल'' की अंतरा-ट्रीय प्रयोग की अवधारणा से संगत बनाना है जो माध्यस्थम् के विधिक केंद्र को द्योतित करता है । संशोधन आगे माध्यस्थम् के ''[मात्र] जगह'' से ''[विधिक] स्थल'' के बीच विभेद करता है।]

धारा 23 का संशोधन

13. धारा 23 में, उपधारा (1) के पश्चात् और उपधारा (2) के पहले निम्नलिखित स्प-टीकरण जोड़े :

''**स्प-टीकरण** - अपनी प्रतिरक्षा में प्रत्यर्थी प्रतिदावा भी प्रस्तुत कर सकेगा या मुजराई का अभिवचन कर सकेगा जो निर्देश की व्याप्ति के भीतर माना जाएगा और इस बात के होते हुए भी माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णीत किया जाएगा कि यह माध्यस्थम् के आरंभिक निर्देश की व्याप्ति के भीतर नहीं आ सकेगा किंतु यह माध्यस्थम् करार की परिधि के भीतर आता है ।''

[**टिप्पण** : यह स्प-टीकरण यह सुनिश्चित करने के लिए है कि प्रतिदावा और मुजराई प्रत्यर्थी द्वारा पृथक/नए निर्देश की ईप्सा किए बिना किसी माध्यस्थम् द्वारा तब तक न्यायनिर्णीत किया जा सकता है जब तक माध्यस्थम् करार की व्याप्ति के भीतर नहीं आता, यह सुनिश्चित करने के लिए कि पक्षकारों के बीच विवादों का अंतिम निपटारा हो और मुकदमेबाजी की बहुलता न हो।]

धारा 24 का संशोधन

14. परंतुक के पश्चात्, ''परंतु यह और कि माध्यस्थम् अधिकरण लगातार दिनों तक साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण या मौखिक बहस के लिए यथासंभव मौखिक सुनवाई करेगा और तब तक कोई स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक पर्याप्त हेतुक नहीं बनता है और स्थगन चाहने वाले पक्षकार पर अनुकरणीय खर्चा सहित खर्चा अधिरोपित कर सकेगा ।'' शब्द अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन माध्यस्थम् में शीघ्र सुनवाईसुनिश्चित करने और अनावश्यक स्थगनों से बचने के लिए है ।]

धारा 25 का संशोधन

15. धारा 25 के, उपखंड (ख) में, ''चालू रखेगा'' शब्दों के पश्चात् ''और प्रतिरक्षा के ऐसे कथन को समपहृत होने के रूप में फाइल करने का अधिकार मानने का

विवेकाधिकार होगा ;'' शब्द जोड़ें ।

धारा 28 का संशोधन

16. धारा 28 में,

(i) उपधारा (1) में ''जहां माध्यस्थम् का'' शब्दों के पश्चात् ''स्थान'' का लोप करे और अंत में ''स्थित हो'' शब्द के लोप करे और ''स्थान'' के स्थान पर ''स्थल'' शब्द रखें ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन केवल स्प-टीकारक है और धारा 20 के संशोधन का अनुसरण करता है ।]

(ii) उपधारा (3) में, ''निबंधनों के अनुसार'' शब्दों के स्थान पर ''निबंधनों को ध्यान में रखते हुए'' शब्द अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : इस संशोधन का आशय **ओ.एन.जी.सी. लि.** बनाम **शा पाइप्स लि.,** (2003) 5 एस. सी. सी. 705, वाले मामले के प्रभाव को उलटना है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि संविदा के निबंधनों के उल्लंघन का परिणाम धारा 28 के विरुद्ध पंचाट दिया जाना होगा और परिणामतः लोक नीति के विरुद्ध होगा ।]

धारा 31 का संशोधन

17. धारा 31 में,

(i) उपधारा (4) में ''स्थान'' शब्द के स्थान पर ''जगह'' शब्द प्रतिस्थापित करें ।

(ii) उपधारा (7) के उपखंड (ख) में ''संदेय ब्याज'' शब्दों के पूर्व 2% प्रतिव-र्ा से अधिक'' शब्द जोड़ें और ''दर से'' शब्दों के पूर्व ''चालू'' शब्द जोड़े और ''अठारह प्रतिशत वार्-िक दर'' शब्द का लोप करें और ''ब्याज'' शब्द जोड़ें ।

(iii) उपधारा (7) के उपखंड (ख) के पश्चात्, स्प-टीकरण 1 : ''ब्याज की लागू दर'' पद का वही अर्थ है जैसा ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 2 के खंड (ख) में है ।''

स्प-टीकरण 2 : ''किसी माध्यस्थम् पंचाट द्वारा संदत्त किए जाने के लिए निदेशित रकम'' पद में धारा 31(7)(क) के अनुसार अधिनिर्णीत ब्याज सम्मिलित है।'' शब्द जोड़े ।

[**टिप्पण** : स्प-टीकरण 1 सुनिश्चित करता है कि ब्याज का व्यतिक्रम दर व्याप्त

वाणिज्यिक वास्तविकताओं के अनुरुप है, न कि 18% का मनमाना अंक।

स्प-टीकरण 2 का आशय **हरियाणा राज्य** बनाम **एस. एल. अरोड़ा,** (2010) 3 एस. सी. 690 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को विधायी रूप से उलटना है, जिसकी शुद्धता को अब **हैदर कन्सल्टिंग (यू.के.)** बनाम **उड़ीसा का राज्यपाल,** (2013) 2 एस. सी. सी. 719 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के आधार पर वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दि-ट किया गया है]

(iv) उपधारा (8) में ''पक्षकारों द्वारा..... गया हो'' शब्दों के पश्चात् लोप करें और ''माध्यस्थम् का खर्च माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा नियत किया जाएगा'' शब्दों के स्थान पर ''माध्यस्थम् का खर्च इस अधिनियम की धारा 6क के अनुसार नियत किया जाएगा ।'' शब्द रखें ।

(v) उपधारा 8 के शे-ा उपबंध का लोप करें ।

धारा 34 का संशोधन

18. धारा 34 में,

(i) उपधारा (1) में ''उपधारा (2क)'' शब्दों के पश्चात्, ''उपधारा (2क)'' शब्द जोड़ें ।

(ii) उपधारा (2) में, ''स्प-टीकरण'' - शब्द के पश्चात्, ''उपखंड (ii) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी शंका को दूर करने के लिए यह घोनित किया जाता है'' शब्दों का लोप करें और ''भारत की लोक नीति के विरुद्ध है'' शब्दों के पश्चात् ''यदि'' शब्द का लोप करें और ''उपखंड (क)'' पंचाट का दिया जाना कपट या भ्र-ट आचरण द्वारा उत्प्रेरित या प्रभावित किया गया था या धारा 75 अथवा धारा 81 के अतिक्रमण में था ।'' और ''उपखंड (ख) यह भारतीय विधि की आधारभूत नीति के उल्लंघन में है ; या'' जोड़े और उपखंड ''(ग) यह नैतिकता या न्याय की सर्वाधिक आधारभूत धारणा के प्रतिकूल है ।'' शब्द जोड़ें ।

[**टिप्पण** : प्रस्तावित स्प-टीकरण 2 देशी और अंतरररा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् दोनों के पंचाटों के लिए **रेनू सागर पावर कं. लि.** बनाम **जनरल इलेक्ट्रिक,** 1994 सप्ली (1) एस. सी. सी. 644 और **श्री लाल महल लि.** बनाम **प्रोगेटोग्रानो स्पा,** (2014) 2 एस. सी. सी. 433 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के अनुरुप पंचाट को अपास्त करने के लिए मानक विहित करना अपेक्षित है । आधार (ग) अंतरररा-ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त विरचना को प्रतिबिंबित करता है । ऐसी विरचना आगे रेनू सागर परीक्षण को कसकर बांधता है और यह

सुनिश्चित करता है कि रेनू सागर में प्रयुक्त ''नैतिकता या न्याय'' पद का प्रयोग परीक्षण को व्यापक बनाने के लिए नहीं किया जा सकता ।]

(iii) उपधारा (2) में स्प-टीकरण के पश्चात् उपधारा ''(2क) अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्ों से भिन्न माध्यस्थम्ों से उद्भूत किसी माध्यस्थम् पंचाट को भी न्यायालय द्वारा अपास्त किया जा सकेगा यदि न्यायालय यह पाता है कि पंचाट उसे देखने मात्र से ही दिखाई पड़ने वाली किसी प्रकट अवैधता से दूनित है ।

परंतु पंचाट को विधि के गलत प्रयोग या साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के आधार पर ही अपास्त नहीं किया जाएगा ।'' अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : प्रस्तावित धारा 34(2क) देशी माध्यस्थम् (न कि अंतरा-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्) से उद्भूत पंचाट को अपास्त करने का अतिरिक्त हालांकि सावधानीपूर्वक सीमित आधार उपबंध करती है । पुनर्विलोकन **ओ.एन.जी.सी. लिमिटेड** बनाम **शा पाइप्स लि.** (2003) 5 एस. सी. सी. 705 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा उपवर्णित प्रकट अवैधता पर आधारित है । परंतुक विधि के गलत प्रयोग और साक्ष्य के पुर्नमूल्यांकन का अपवाद सृजित करता है जो पंचाट अपास्त करने का आधार नहीं हो सकता है ।]

(iv) उपधारा (3) में ''अपास्त करने के लिए कोई आवेदन'' शब्दों के स्थान पर ''उक्त उपधाराओं के अधीन कोई आवेदन'' शब्द रखें ।

(v) उपधारा (4) को उपधारा (6) को पुर्नसंख्यांकित करें और उपधारा ''(4) इस धारा के अधीन कोई आवेदन दूसरे पक्षकार को पूर्व नोटिस जारी करने के पश्चात् ही किसी पक्षकार द्वारा फाइल किया जाएगा और ऐसे आवेदन के साथ इस अपेक्षा का अनुपालन पृ-ठांकित करते हुए आवेदक का शपथ-पत्र संलग्न किया जाएगा'' अंतःस्थापित करें और उपधारा ''(5) इस धारा के अधीन आवेदन का निपटान यथाशीघ्र और किसी भी दशा में वह तारीख जिसको उपधारा (4) के अधीन नोटिस की तामील की गई है, से एक वर्-ा की अवधि के भीतर किया जाएगा ।'' अंतःस्थापित करें ।

धारा 36 का संशोधन

19. धारा 36 में,

(i) ''जहां धारा 34'' शब्दों के पहले उपधारा (1) अंकित करें और ''समाप्त हो गया है'' शब्दों के पश्चात् ''या ऐसा आवेदन किए जाने पर उसे नामंजूर कर दिया गया है'' शब्दों का लोप करें और ''तब इसकी उपधारा (2) के उपबंध के अधीन''

शब्द जोड़े ।

(ii) उपधारा ''(2) जहां माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने का आवेदन धारा 34 के अधीन न्यायालय में फाइल किया जाता है वहां ऐसे आवेदन का फाइल किया जाना स्वयं तब तक पंचाट को अप्रवर्तनीय नहीं बनाता जब तक उस प्रयोजन के लिए किए गए पृथक् आवेदन पर न्यायालय इसकी उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार पंचाट के प्रचालन पर रोक नहीं लगता,'' अंतःस्थापित करें ।

(iii) उपधारा ''(3) पंचाट के प्रचालन के रोक के लिए उपधारा (2) के अधीन पृथक् आवेदन फाइल करने पर न्यायालय, ऐसी शर्त जो वह ठीक समझे, लिखित रूप में कारण बताते हुए पंचाट के प्रचालन पर रोक लगा सकेगा'', अंतःस्थापित करें ।

(iv) निम्न परंतुक अंतःस्थापित करें, ''परंतु न्यायालय धन के पंचाट की दशा में रोक की मंजूरी पर विचार करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन धन डिक्रियों पर रोक मंजूर करने वाले उपबंधों पर सम्यक् रूप से विचार करेगा।''

[**टिप्पण** : यह संशोधन यह सुनिश्चित करने के लिए है कि धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने मात्र से पंचाट के प्रवर्तन पर स्वतः रोक नहीं चालू हो जाता । **नेशनल एल्यूमिनियम कं. लि.** बनाम **प्रेसस्टील एंड फैब्रीकेशन्स (पी.) लिमिटेड एक अन्य,** (2004) 1 एस. सी. सी. 540 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की यह सिफारिश है कि ऐसा संशोधन समय की आवश्यकता है ।]

धारा 37 का संशोधन

20. धारा 37 में,

(i) उपधारा (1) में, उपखंड ''(क)'' को उपखंड ''(ख)'' के रूप में पुनर्संख्यांकित करें और उपखंड ''(क) धारा 8 के अधीन माध्यस्थम् के पक्षकारों को निर्दि-ट करने से इनकार करना ;'' अंतःस्थापित करें ।

(ii) उपधारा (1) में उपखंड ''(ख)'' को उपखंड ''(घ)'' के रूप में पुनर्संख्यांकित करें और उपखंड ''(ग) अंतरर-ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न माध्यस्थम् की दशा में, धारा 11 के अधीन मध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार करना या उसके द्वारा अभिहित किसी व्यक्ति या संस्था को ऐसी नियुक्ति हेतु निर्दि-ट करने से इनकार करना'', अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : उपधारा (क) और (ग) को धारा 8 के अधीन माध्यस्थम् के पक्षकारों

को निर्दि-ट करने से इनकार करने के आदेशों के मामलों में अपील के लिए उपबंध करने और ऐसी अपील का उपबंध करने के लिए जोड़ा गया जहां उच्च न्यायालय क्रमशः माध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार करता है ।]

(iii) उपधारा (3) में ''द्वितीय अपील'' शब्दों के पहले ''लेटर पेटेंट अपील सहित'' शब्द जोड़े जाएंगे ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन स्प-टीकारक है और पक्षकार को एल.पी.ए. फाइल करने की गुंजाइस को कम करता है ।]

धारा 47 का संशोधन

21. धारा 47 के उपधारा (2) के पश्चात् स्प-टीकरण में, ''न्यायालय'' से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय शब्द के आगे ''पर अधिकारिता रखने वाला उच्च न्यायालय'' शब्द जोड़े और ''सिविल न्यायालय से निम्न श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय'' शब्दों के स्थान पर ''उच्च न्यायालय'' शब्द रखें ।

[**टिप्पण** : धारा 2(ङ) का टिप्पण देखें ।]

धारा 48 का संशोधन

22. धारा 48 में,

(i) उपधारा (2) के स्प-टीकरण में, ''खंड (ख) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी शंका को दूर करने के लिए घोनित किया जाता है'' शब्दों के स्थान पर ''किसी शंका को दूर करने के लिए यह स्प-ट किया जाता है'' शब्द रखें और ''लोकनीति के विरुद्ध होगा यदि'' शब्दों के स्थान पर ''लोक नीति के विरुद्ध होगा केवल यदि'' शब्द रखें और उपखंड ''(क)'' अंतःस्थापित करें तथा ''कपट या भ्र-टाचार'' शब्दों के पश्चात् ''और'' जोड़ें और उपखंड ''(ख) यह भारतीय विधि की आधारभूत नीति के उल्लंघन में है ; (ग) यह नैतिकता या न्याय की भारत की सर्वाधिक आधारिक धारणा के प्रतिकूल है ।'' जोड़ें ।

(ii) उपधारा ''(3)'' को उपधारा ''(5) के रूप में पुर्नसंख्यांकित करें और निम्न रूप में उपधारा (3) जोड़ें, ''(3) उपरोक्त उपधाराओं के अधीन कोई आक्षेप उस तारीख को ऐसा आक्षेप करने वाले पक्षकार को अधिनियम की धारा 47 के अधीन आवेदन की नोटिस प्राप्त हुई है से तीन मास बीत जाने के पश्चात् नहीं किया जाएगा :

परंतु यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आक्षेप उठाने वाले पक्षकार को तीन मास की उक्त अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारण से निवारित किया गया था तो वह तीस दिन की अतिरिक्त अवधि के भीतर, किंतु इसके पश्चात् नहीं, आवेदन ग्रहण कर सकेगा ।

(iii) उपधारा ''(4) इस धारा के अधीन किसी आक्षेप का निपटान यथाशीघ्र और किसी भी दशा में उस तारीख से, जिसको धारा 47 के अधीन आवेदन के अनुसरण में जारी नोटिस तामील की गई है, एक व-र्ा की अवधि के भीतर किया जाएगा ।'' अंतःस्थापित करें ।

[**टिप्पण** : उपरोक्त उपबंध धारा 48 के अधीन किसी आक्षेप की सुनवाई के लिए समय-सीमा नियत करने हेतु सम्मिलित किए गए हैं । उपरोक्त समय ढांचा धारा 34 के अधीन आवेदन की सुनवाई के लिए नियत समय ढांचे के अनुरुप है।]

(iv) उपधारा ''(6) अधिनियम की धारा 6क में उपवर्णित खर्चा व्यवस्था अधिनियम की धारा 47 और 48 से संबंधित कार्यवाही को लागू होगी ।''

[**टिप्पण** : यह उपबंध यह सुनिश्चित करने के लिए सम्मिलित किया गया है कि ''असफल पक्षकार को खर्चा देना ही होगा ।'' व्यवस्था धारा 47 और 48 के अधीन कार्यवाही को लागू होती है ।]

धारा 85क का अंतःस्थापन

संक्रमणकालीन उपबंधों पर नई धारा 85क सम्मिलित की गई है ।

संक्रमणकालीन उपबंध - (1) जब तक माध्यस्थम् और सुलह (संशोधनकारी) अधिनियम, 2014 में अन्यथा उपबंध न हो, (यथासंशोधित) वर्तमान अधिनियम के उपबंधों का भवि-यलक्षी प्रवर्तन होगा और निम्नलिखित स्थितियों के सिवाय नए माध्यस्थम्ों और नए आवेदनों को ही लागू होंगे -

(क) धारा 6क के उपबंध सभी लंबित कार्यवाहियों और माध्यस्थम्ों को लागू होंगे ।

स्प-टीकरण : यह स्प-ट किया जाता है कि जहां खर्च के मुद्दे का विनिश्चय पहले ही न्यायालय/अधिकरण द्वारा किया गया है, इसे उस विस्तार तक नहीं उठाया जाएगा ।

(ख) धारा 16 की उपधारा (7) के उपबंध, उसके सिवाय जहां मुद्दे का विनिश्चय न्यायालय/अधिकरण द्वारा किया गया है, सभी लंबित कार्यवाहियों और माध्यस्थम्ों को लागू होंगे ।

(ग) धारा 24 के दूसरे परंतुक के उपबंध सभी लंबित माध्यस्थम्ों को लागू होंगे ।

(2) वर्तमान धारा के प्रयोजनों के लिए -

(क) ''नए माध्यस्थम्ों'' का अभिप्राय ऐसे माध्यस्थम्ों से है जहां माध्यस्थम् और सुलह (संशोधनकारी) अधिनियम, 2014 के प्रवर्तन की तारीख के पूर्व माध्यस्थम् अधिकरण की नियुक्ति का कोई अनुरोध नहीं किया गया है : या माध्यस्थम् अधिकरण की नियुक्ति के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया है ।

(ख) ''नए आवेदन'' से माध्यस्थम् और सुलह (संशोधनकारी) अधिनियम, 2014 के प्रवर्तन की तारीख के पश्चात् न्यायालय या माध्यस्थम् अधिकरण को किए गए आवेदन अभिप्रेत है ।

[**टिप्पण** : यह संशोधन लंबित माध्यस्थम्ों/कार्यवाहियों की बावत प्रत्येक प्रस्तावित संशोधनों के प्रवृत्त होने की व्याप्ति को स्प-ट करने के लिए है ।]

अनुसूचियों का संशोधन

तीसरी अनुसूची के पश्चात् ''**चौथी अनुसूची**'' जोड़ें । (धारा 12 देखें)

निम्नलिखित आधार मध्यस्थों की स्वतंत्रता या नि-पक्षता के बारे में उचित शंकाएं पैदा करते हैं :

पक्षकारों या काउंसेल के मध्यस्थ का संबंध

1. मध्यस्थ पक्षकार का कर्मचारी, परामर्शी, सलाहकार या कोई अन्य भूत या वर्तमान कारबार संबंधी है ।

2. मध्यस्थ पक्षकारों में से किसी एक का इस समय प्रतिनिधित्व करता है या सलाह देता है या किसी एक से सहबद्ध है ।

3. मध्यस्थ पक्षकारों में से किसी एक का वर्तमान में अधिवक्ता या विधि फर्म में काउंसेल रूप में प्रतिनिधित्व करता है ।

4. मध्यस्थ उसी विधि फर्म में अधिवक्ता है जो पक्षकारों में से एक का प्रतिनिधित्व कर रही है ।

5. मध्यस्थ पक्षकारों में से एक के सहबद्ध में प्रबंधक, निदेशक या प्रबंध का भाग है या समान नियंत्रक प्रभाव रखता है यदि सहबद्ध प्रत्यक्षतः माध्यस्थम् के विवाद वि-नय में अंतर्वलित है ।

6. मध्यस्थ की विधि फर्म का मध्यस्थ के रूप में स्वयं के लिप्त हुए बिना पहले संबंध था किंतु अब मामले में अंतर्वलन समाप्त हो गया है ।

7. मध्यस्थ की विधि फर्म का वर्तमान में पक्षकारों में से किसी एक के साथ

महत्वपूर्ण वाणिज्यिक संबंध है या एक पक्षकार से सहबद्ध है ।

8. मध्यस्थ नियमित रूप से नियुक्तिकर्ता पक्षकार को सलाह देता है या नियुक्तिकर्ता पक्षकार का सहबद्ध है यद्यपि न तो मध्यस्थ न ही उसका या उसकी फर्म उससे महत्वपूर्ण वित्तीय आय व्युत्पन्न करती है ।

9. मध्यस्थ का एक पक्षकार और कंपनी के दशा में प्रबंध और कंपनी का नियंत्रण करने से जुड़े व्यक्तियों से गहरा पारिवारिक संबंध है ।

10. मध्यस्थ का सगा पारिवारिक सदस्य एक पक्षकार से महत्वपूर्ण वित्तीय हित रखता है या एक पक्षकार से सहबद्ध है ।

11. मध्यस्थ ऐसी ईकाई का विधिक प्रतिनिधि है जो माध्यस्थम् का पक्षकार है।

12. मध्यस्थ प्रबंधक, निदेशक या प्रबंध का भाग है या एक पक्षकार पर इस प्रकार का नियंत्रक प्रभाव रखता है ।

13. मध्यस्थ का एक पक्षकार में या मामले के नि-कर्-ा पर महत्वपूर्ण वित्तीय हित रखता है ।

14. मध्यस्थ नियमित रूप से नियुक्तिकर्ता पक्षकार या नियुक्तिकर्ता पक्षकार के सहबद्ध को सलाह देता है और मध्यस्थ या उसकी फर्म उससे महत्वपूर्ण वित्तीय आय व्युत्पन्न करती है ।

मध्यस्थ का विवाद से संबंध

15. मध्यस्थ ने किसी पक्षकार या एक पक्षकार के सहबद्ध को विवाद पर विधिक सलाह या विशे-ाज्ञ राय उपलब्ध कराई है ।

16. मध्यस्थ का मामले में पूर्ववर्ती अंतर्वलन है ।

मध्यस्थ का विवाद में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित

17. मध्यस्थ एक पक्षकार में या एक पक्षकार के सहबद्ध में जो व्यक्तिगत रूप से धारित की गई है, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः शेयर धारित करता है ।

18. मध्यस्थ के सगे कुटुम्ब सदस्य का विवाद के नि-कर्-ा में महत्वपूर्ण वित्तीय हित है ।

19. मध्यस्थ या मध्यस्थ के सगे कुटुम्ब सदस्य का ऐसे तीसरे पक्षकार से गहरा संबंध है जो विवाद में असफल पक्षकार की ओर से आश्रय का दायी हो सकेगा ।

पक्षकारों में से किसी एक पक्षकार के लिए पूर्ववर्ती सेवा या मामले में अन्य अंतर्वलन

20. मध्यस्थ ने पिछले तीन व-र्षों के भीतर एक पक्षकार के काउंसेल के रूप में सेवा की है या एक पक्षकार से सहबद्ध रहा है या पहले सलाह दी है या असंबद्ध वि-नय में नियुक्ति करने में पक्षकार या पक्षकार के सहबद्ध द्वारा परामर्श लिया गया है, किंतु मध्यस्थ और पक्षकार या पक्षकार के सहबद्ध का अब संबंध नहीं रहा है ।

21. मध्यस्थ ने पिछले तीन व-र्षों में किसी एक पक्षकार या किसी असंबद्ध वि-नय में किसी एक पक्षकार के सहबद्ध के विरुद्ध काउंसेल के रूप में सेवा की है।

22. मध्यस्थ को पिछले तीन व-र्षों के भीतर किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध द्वारा दो या अधिक अवसरों पर मध्यस्थ नियुक्त किया गया है ।

23. मध्यस्थ की विधि फर्म ने पिछले तीन व-र्षों के भीतर मध्यस्थ के बिना किसी असंबद्ध वि-नय में किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध के लिए कार्य किया है ।

24. मध्यस्थ वर्तमान में किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार से सहबद्ध से संबंधित विवाद्यक पर एक अन्य माध्यस्थम् में मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है या पिछले तीन व-र्षों के भीतर कार्य किया है ।

मध्यस्थ और एक अन्य मध्यस्थ या काउंसेल के बीच संबंध

25. मध्यस्थ और एक अन्य मध्यस्थ उसी विधि फर्म में अधिवक्ता हैं ।

26. मध्यस्थ पिछले तीन व-र्षों के भीतर उसी मध्यस्थम में भागीदार था या अन्यथा एक अन्य मध्यस्थ या किसी काउंसेल से सहबद्ध था ।

27. मध्यस्थ की विधि फर्म का अधिवक्ता उन्हीं पक्षकार या पक्षकारों या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध वाले एक अन्य विवाद में मध्यस्थ है ।

28. मध्यस्थ का सगा कुटुम्ब सदस्य एक पक्षकार का प्रतिनिधित्व करने वाले विधि फर्म का भागीदार या कर्मचारी है किंतु विवाद में सहायता नहीं कर रहा है ।

29. मध्यस्थ ने पिछले तीन व-र्षों के भीतर उसी काउंसेल या उसी विधि फर्म द्वारा तीन से अधिक नियुक्तियां प्राप्त की हैं ।

मध्यस्थ और माध्यस्थम् से जुड़े पक्षकार और अन्य व्यक्तियों के बीच संबंध

30. मध्यस्थ की विधि फर्म वर्तमान में किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार से सहबद्ध के प्रतिकूल कार्य कर रही है ।

31. मध्यस्थ पिछले तीन व-र्षों के भीतर पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध के साथ भूतपूर्व कर्मचारी या भागीदार जैसे वृत्तिक हैसियत में सहबद्ध रहा है ।

अन्य परिस्थितियां

32. मध्यस्थ प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः ऐसे शेयर धारित करता है जो संख्या या अभिधान के कारण किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध जो सार्वजनिक रूप से सूचीबद्ध है, का तात्विक होल्डिंग गठित करता है ।

33. मध्यस्थ विवाद हेतु नियुक्तिकर्ता प्राधिकारी के साथ माध्यस्थम् संस्थान में पद धारण करता है ।

34. मध्यस्थ प्रबंधक, निदेशक या प्रबंध का भाग है या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध में समरूप नियंत्रक प्रभाव रखता है जहां सहबद्ध माध्यस्थम् के विवाद वि-नयों में प्रत्यक्षतः अंतवर्लित नहीं है ।

स्प-टीकरण : (1) ''सगा कुटुम्ब सदस्य'' पद पति/पत्नी, सहोदर भाई या बहन, लड़का, माता-पिता या जीवन साथी निर्दि-ट करता है ।

(2) 'सहबद्ध' पद पैतृक कंपनी सहित कंपनियों के एक समूह की सभी कंपनियों को समावि-ट करता है ।

(3) समुद्रीय या पण्य पदार्थ माध्यस्थम् जैसे कतिपय विनिर्दि-ट प्रकार के माध्यस्थम् में छोटे विशि-टीकृत पूल से मध्यस्थ करने का चलन हो सकता है । यदि ऐसे क्षेत्रों में विभिन्न मामलों में पक्षकारों के लिए बारंबार उसी मध्यस्थ को नियुक्त करने की प्रथा और चलन है तो उपरोक्त उपवर्णित नियमों को लागू करते समय इस पर ध्यान देना सुसंगत तथ्य है ।

[**टिप्पण** : उपरोक्त नियम अंतरा-ट्रीय माध्यस्थम् में हित के विरोध पर अंतरा-ट्रीय अधिवक्ता संगम मार्गदर्शक सिद्धांतों की नारंगी सूची से लिए और रुपांतरित किए गए हैं ।]

चौथी अनुसूची के पश्चात् ''पांचवीं अनुसूची'' जोड़ें । (धारा 12 देखें)

पक्षकारों या काउंसेल से मध्यस्थ का संबंध

1. मध्यस्थ किसी पक्षकार का कर्मचारी, परामर्शी, सलाहकार है या कोई अन्य भूत या वर्तमान कारबार संबंध रखता है ।

2. मध्यस्थ वर्तमान में किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध का प्रतिनिधित्व करता है या सलाह देता है ।

3. मध्यस्थ वर्तमान में किसी एक पक्षकार के अधिवक्ता या काउंसेल के रुप में कार्य कर रहे विधि फर्म का प्रतिनिधित्व करता है ।

4. मध्यस्थ उसी विधि फर्म का अधिवक्ता है जो किसी एक पक्षकार का प्रतिनिधित्व कर रहा है ।

5. मध्यस्थ प्रबंधक, निदेशक या प्रबंध का भाग है या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध में समान नियंत्रक प्रभाव रखता है यदि सहबद्ध प्रत्यक्षतः माध्यस्थम् के समक्ष विवाद के वि-नयों में अंतवर्लित है ।

6. मध्यस्थ की विधि फर्म का स्वयं मध्यस्थ के जुड़े बिना मामले में पहले अंतर्वलन था किंतु अब समाप्त हो गया है ।

7. मध्यस्थ की विधि फर्म का वर्तमान में किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध से महत्वपूर्ण वाणिज्यिक संबंध है ।

8. मध्यस्थ नियमित रूप से नियुक्तिकर्ता पक्षकार या नियुक्तिकर्ता पक्षकार के सहबद्ध को सलाह देता है यद्यपि न तो मध्यस्थ और न ही उसकी फर्म उससे महत्वपूर्ण वित्तीय आय व्युत्पन्न नहीं करती ।

9. मध्यस्थ का किसी एक पक्षकार और कंपनी की दशा में कंपनी के प्रबंध और नियंत्रण से जुड़े व्यक्तियों से सगा कुटुम्ब संबंध है ।

10. मध्यस्थ के सगे कुटुम्ब सदस्य का किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध में महत्वपूर्ण वित्तीय हित है ।

11. मध्यस्थ ऐसी सत्ता का विधिक प्रतिनिधि है जो माध्यस्थम् का पक्षकार है।

12. मध्यस्थ किसी एक पक्षकार का प्रबंधक, निदेशक या प्रबंध का भाग है या समान नियंत्रक प्रभाव रखता है ।

13. मध्यस्थ किसी एक पक्षकार या मामले के नि-क-र्ा में महत्वपूर्ण वित्तीय हित रखता है ।

14. मध्यस्थ नियमित रूप से नियुक्तिकर्ता पक्षकार या नियुक्तिकर्ता पक्षकार के सहबद्ध को सलाह देता है और मध्यस्थ या उसका फर्म उससे महत्वपूर्ण वित्तीय आय व्युत्पन्न करता है ।

विवाद से मध्यस्थ का संबंध

15. मध्यस्थ ने किसी पक्षकार या किसी एक पक्षकार के सहबद्ध को विवाद पर विधिक सलाह या विशे-नज्ञ राय उपलब्ध करायी है ।

16. मध्यस्थ का मामले में पूर्ववर्ती अंतर्वलन है ।

विवाद में मध्यस्थ का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित

17. मध्यस्थ किसी एक पक्षकार या किसी एक पक्षकार से सहबद्ध जो व्यक्तिगत रूप से धारित की गई है, का प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः शेयर धारक है ।

18. मध्यस्थ के सगे कुटुम्ब सदस्य का विवाद के नि-क-र्ा में महत्वपूर्ण वित्तीय

हित है ।

19. मध्यस्थ या मध्यस्थ के सगे कुटुम्ब सदस्य का ऐसे तीसरे पक्षकार से गहरा संबंध है जो विवाद में असफल पक्षकार की ओर से आश्रय का दायी हो सकता है ।

स्प-टीकरण : (1) ''सगा कुटुम्बर सदस्य'' पद पति/पत्नी, सहोदर भाई या बहन, लड़का, माता-पिता या जीवन साथी निर्दि-ट करता है ।

(2) 'सहबद्ध' पद पैतृक कंपनी सहित कंपनियों के एक समूह की सभी कंपनियों को समावि-ट करता है ।

(3) समुद्रीय या पण्य पदार्थ जैसे कतिपय विनिर्दि-ट प्रकार के माध्यस्थम् में छोटे विशि-टीकृत पूल से मध्यस्थ नियुक्त करने का चलन हो सकता है । यदि ऐसे क्षेत्रों में विभिन्न म ामलों में पक्षकारों के लिए बारंबार उसी मध्यस्थ को नियुक्त करने की प्रथा और चलन है तो उपरोक्त उपवर्णित नियमों को लागू करते समय इस पर ध्यान देना सुसंगत तथ्य है ।

[**टिप्पण** : उपरोक्त अंतरा-ट्रीय माध्यस्थम् में हित के विरोध पर अंतरा-ट्रीय अधिवक्ता संगम मार्गदर्शक सिद्धांतों की लाल सूची से लिए और रुपांतरित किए गए हैं ।]

पांचवीं अनुसूची के पश्चात् ''छठी अनुसूची'' जोड़ें । (धारा 11(14) देखें)

विवादित रकम (रुपए)	आदर्श फीस (उपदर्शात्मक)
5,00,000/- रुपए तक	45000/- रुपए
5,00,000 रुपए से 20,00,000 रुपए तक	45000 रुपए + 5,00,000 रुपए से ऊपर दावा रकम का 3.5%
20,00,000 रुपए से 1,00,00,000 रुपए तक	97,500 रुपए + 20,00,000 रुपए से ऊपर दावा रकम का 3%
1,00,00,000 रुपए से 10,00,00,000 रुपए तक	3,37,500 रुपए + 1,00,00,000 रुपए से ऊपर दावा रकम का 1%
10,00,00,000 रुपए से 20,00,00,000 रुपए तक	12,37,500 रुपए + 100,00,000 रुपए से ऊपर दावा रकम का .75%
20,00,00,000 रुपए से ऊपर	19,87,500 रुपए + 20,00,00,000 रुपए से ऊपर दावा रकम का .5% किंतु

	अधिकतम सीमा 30,00,000 रुपए तक

*मध्यस्थ का एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किए जाने की दशा में, वह उपरोक्त उपवर्णित सारणी के अनुसार संदेय फीस पर 25% के अतिरिक्त रकम का हकदार होगा।

छठी अनुसूची के पश्चात्, ''सातवीं अनुसूची'' जोड़ें ।

(धारा 12(1)(ख) स्प-टीकरण 2 देखें)

नाम :

संपर्क व्यौरा :

पूर्व अनुभव (माध्यस्थम् का अनुभव सहित) :

चालू माध्यस्थम्ों की संख्या :

किसी पक्षकार के भूत या वर्तमान संबंध या हित या विवादित वि-नय-वस्तु के संबंध को प्रकट करने वाली परिस्थितियां चाहे, वित्तीय, कारबार, वृत्तिक या अन्य प्रकार की हैं जिससे आपकी स्वतंत्रता या नि-पक्षता के बारे में उचित शंकाएं पैदा करने की संभावना है (सूची दर्शित करें)

ऐसी परिस्थितियां जिससे माध्यस्थम् में पर्याप्त समय लगाने की आपकी योग्यता और विशे-ाकर 24 मास के भीतर पूरा माध्यस्थम् समाप्त करने और तीन मास के भीतर पंचाट अधिनिर्णीत करने की आपकी योग्यता (सूची दर्शित करें)''

ह0/-
(न्यायमूर्ति ए. पी. शहा)
अध्यक्ष

ह0/-
(न्यायमूर्ति एस. एन. कपूर)
सदस्य

ह0/-
(प्रो. (डा.) मूलचंद शर्मा)
सदस्य

ह0/-
(न्यायमूर्ति ऊ-ा मेहरा)
सदस्य

ह0/-
(एन. एल. मीणा)
सदस्य-सचिव

ह0/-
(पी. के. मल्होत्रा)
पदेन-सदस्य